रटने की ओर जाती शिक्षा व सीखना-सिखाना

पत्रिका की संवाद श्रृंखला की यह तीसरी परिचर्चा है और विषय है– 'रटने की ओर जाती शिक्षा और सीखना-सिखाना।' पहले दो संवाद दिल्ली में आयोजित किए गए थे, इस बार यह संवाद उदयपुर में किया गया।
संवाद में उदयपुर जिले के शिक्षकों– कानपुर शासकीय स्कूल में भौतिकी के शिक्षक राजेश भट्ट, शासकीय विद्यालय गोगुन्दा main की शिक्षिका शहनाज़ डी के और विद्या भवन के शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय में प्राध्यापक डॉ गिरीश शर्मा व विद्या भवन शिक्षा सन्दर्भ केन्द्र से सम्बद्ध विज्ञान और पर्यावरण विषय की स्रोत सदस्या यशोधरा ने भागीदारी की। संवाद का संचालन रजनी द्विवेदी और गुरबचन सिंह ने किया। संवाद के समन्वयन में रंजना ने सहयोग किया।

रजनी द्विवेदी : जैसा कि ऊपर ज़िक्र किया गया है, इस संवाद में 'रटने की ओर जाती शिक्षा व सीखना-सिखाना' के बारे में बातचीत है। इस विषय से सम्बन्धित कुछ चुने हुए सवालों पर चर्चा हुई, ये हैं:

आमतौर पर समझने, रटने और याद करने को एक जैसा माना जाता है। क्या ये एक जैसे ही हैं या इनमें कुछ फ़र्क़ है और यदि फ़र्क़ है तो वह क्या है?

दूसरा सवाल था कि क्या कक्षाओं के स्तर बदलने से इस विषय यानी समझने, रटने और याद करने के मायने भी बदल जाते हैं? या ये मायने एक जैसे ही रहते हैं और अगर ये बदल जाते हैं तो किस तरह से बदल जाते हैं?

तीसरा सवाल था, आज की शिक्षा पद्धति में जिस तरह का सीखने-सिखाने का काम हो रहा है क्या उसमें रटने की प्रवृत्ति और ज़रूरत बढ़ गई है ? और यह रटना क्यों और कैसे हो रहा है ?

और चौथा, आज की प्रतियोगी शिक्षा प्रणाली के दौर में पढ़ाई का जो स्वरूप है क्या हम उसमें रटे के बिना पढ़ाई की कल्पना कर सकते हैं और यदि नहीं, तो क्यों ?

डॉ गिरीश शर्मा : पहला सवाल– समझने, रटने और याद करने को अकसर एक जैसा समझा जाता है क्या ? मेरा मानना है कि तीनों में फ़र्क़ है। जैसे कोई प्रश्न है, अगर 'समझकर याद करने' की दृष्टि से देखें तो जिस बच्चे ने किसी चीज़ को समझ लिया वह परीक्षा में जाकर उसको कैसे भी लिख देगा। लेकिन वह, जिसने पूरा का पूरा पेज रटा है, तो वह सवाल में अगर थोड़ा-सा भी फेरबदल हो गया है, या वह उसके उत्तर का एक भी बिन्दु भूल जाता है, तो फिर उसके जवाब को नहीं लिख पाएगा। लिखने के लिए उसे शुरुआत की लाइन याद आनी चाहिए। वैसे कभी-कभी लगता है कि याद करना और रटना लगभग एक जैसा ही है। परन्तु याद करने में बच्चा अपनी तरफ़ से भी इनपुट दे सकता है। उदाहरण के लिए, एक पेज के उत्तर वाला कोई प्रश्न रटना है पर हर किसी बच्चे की क्षमता नहीं होती कि वो जस का तस उसे रट ले। मुझे लगता है कि अधिकांश बच्चे याद रख सकते हैं और याद करने के कई तरीक़े हैं

जैसे– उसे बिन्दुवार लिखना या उसका कोई फ़्लो-चार्ट बनाना या कोई चित्र बनाना कि मुझे इस तरह से इस प्रश्न का जवाब लिखना है। यानी याद करने में वह अपना समझा हुआ चित्र याद करके उत्तर बना कर किसी भी तरह से लिख सकता है। 'समझने' में उसके दिमाग़ में पूरी छवि बन गई कि यह मुख्य अवधारणा है, मुझे इसे इस तरह से याद रखना है, और इस तरह से उत्तर पुस्तिका में लिखना है। अगर ऐसा कोई भी सवाल आएगा तो मैं उसका उत्तर अच्छे से लिख लूँगा। मुझे इस तरह इन तीनों में फ़र्क़ लगता है।

दूसरा सवाल– क्या प्राथमिक, उच्च प्राथमिक या बाक़ी कक्षाओं के स्तर के अनुरूप इनके मायने बदल जाते हैं? तीसरी कक्षा से बारहवीं कक्षा के बारे में हम सोचें तो शुरुआत में जब बच्चा स्कूल आता है तब वह रटने की कोशिश नहीं करता है, बिल्कुल भी नहीं करता। यहाँ तक कि घर पर भी वह चीज़ों को समझता है और सोचने की कोशिश करता है। जब वह स्कूल में आने लगता है, अपने साथियों से मिलता है, अपने शिक्षक से मिलता है और स्कूल में सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं से जुड़ता है, बस वहीं से धीरे-धीरे उसकी रटने की आदत शुरू हो जाती है। उसको कहा जाता है कि कुत्ते को कुत्ता न बोलकर 'डॉग' बोलो और बिल्ली को 'कैट' बोलो। समझना तो कहीं और रह जाता है और बिना समझ के एवं बिना अर्थ के याद रखने पर ज़ोर होता है। रटने की प्रवृत्ति यहीं से शुरू होती है। यह सब शुरुआती कक्षाओं यानी कक्षा एक-दो से ही शुरू हो जाता है। अगर शुरुआती कक्षाओं से ही समझने पर ज़ोर हो तब हो सकता है कि बारहवीं कक्षा तक आते-आते या उससे बहुत पहले ही उसको समझ कर सीखने का महत्त्व पता चल जाए ।

"वे सभी चाहते थे कि उन्हें केवल प्रश्न व उनके उत्तर लिखवा दिए जाएँ और वे उन सभी प्रश्नों व उनके उत्तरों को रट लें। वे इस तरह से पढ़ना ही नहीं चाहते थे, जिसमें पहले उनको ख़ुद को कुछ काम करना हो।"

इसी के चलते, बीएड में जो छात्र हमारे पास आते हैं (वैसे बारहवीं या स्नातक कक्षाओं का भी कुछ ऐसा ही हाल होगा) यदि हम उनको कहें कि यह प्रश्न समझना है तो वे समझेंगे नहीं, रटेंगे ही। एक उदाहरण मैं आपको देना चाहूँगा– बीएड के कुछ छात्र जो तीस की उम्र के आसपास थे, उन्होंने मुझसे कहा कि वे कुछ प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी कर रहे हैं और इसलिए वे चाहते हैं कि मैं उन्हें भूगोल पढ़ा दूँ। मैंने उनसे कहा कि मेरा विषय शिक्षण पद्धतियाँ हैं अतः भूगोल को किस तरह पढ़ाया जाता है मैं उस बारे में ज़्यादा बात नहीं कर सकता हूँ। उन्होंने मुझ पर बहुत दबाव बनाया और अन्ततः मैंने भी सोचकर हाँ कह दी कि इससे मेरा विषय का दोहराव हो जाएगा।

हमने एनसीईआरटी की छठी कक्षा की किताब से शुरुआत की। पहला पाठ लेकर उसके पहले पैराग्राफ़ से उसे पढ़ना शुरू किया। छात्रों से मैंने कहा कि इस पाठ को पढ़ने के दौरान जो प्रश्न बन रहे हैं हम उन पर बात करेंगे। पढ़ते-पढ़ते यह भी रेखांकित कर लें कि कहाँ क्या प्रश्न बन सकता है। यानी पहले वे बिन्दु और अवधारणाएँ ढूँढ़ लें फिर अन्य स्रोत सामग्री या नेट पर इनके बारे में और ज़्यादा पढ़ने व जानने की कोशिश करेंगे तथा बातचीत भी करेंगे। एक-दो दिन तक यह सिलसिला जारी रहा पर फिर आगे नहीं चल पाया।

वे सभी चाहते थे कि उन्हें केवल प्रश्न व उनके उत्तर लिखवा दिए जाएँ और वे उन सभी प्रश्नों व उनके उत्तरों को रट लें। वे इस तरह से पढ़ना ही नहीं चाहते थे, जिसमें पहले उनको

ख़ुद को कुछ काम करना हो। मैंने कहा, "अगर तुम ख़ुद ही नहीं पढ़ना चाहते हो तो मैं ही एक-एक पैराग्राफ़ पढ़ता हूँ और फिर उसमें से हम सब मिलकर उन बिन्दुओं और अवधारणाओं को रेखांकित कर लेंगे। मैं बीच-बीच में प्रश्न पूछता हूँ कि किस तरह से इनपर समझ बनाना है।" फिर एक अन्य पाठ को तय प्रक्रिया से पढ़ाने की कोशिश की, पर यह तरीक़ा भी असफल हो गया।

मुझे लगता है कि अगर वे स्वयं पूरा पाठ पढ़ लेते तो उस पाठ पर उनकी एक व्यापक समझ बनती। और किसी अवधारणा के आगे-पीछे क्या अवधारणाएँ एवं उप अवधारणाएँ जुड़ रही हैं यह भी समझ आता, उसकी पूरी पृष्ठभूमि समझ में आती। फिर यदि प्रतियोगी परीक्षा में किसी भी तरह का प्रश्न आता तो वे उसे हल कर पाते। क्योंकि न तो उन्होंने स्कूल में पूरे पाठ पढ़े और ना ही स्नातक में उस तरह से पाठ पढ़े तो यहाँ भी वे पढ़कर समझना ही नहीं चाहते, बस रटना चाहते हैं।

मुझे लगता है कि रटने की प्रवृत्ति सभी स्तरों पर है और बहुत ज़्यादा है एवं सारा ज़ोर भी रटने पर ही दिया जा रहा है, क्योंकि सब ज़्यादा-से-ज़्यादा अंक प्राप्त करने की दौड़ में लगे हुए हैं। शिक्षा से व्यक्ति का जिस तरह का विकास होना चाहिए वह विकास खाली अंक प्राप्त कर लेने से नहीं होता, वह व्यक्तित्व में भी कहीं-न-कहीं झलकता है। किस तरह से हम अपने बच्चों से बात कर रहे हैं, किस तरह अपने सहकर्मियों से बात कर रहे हैं, किस तरह से हम अपने परिवार से बात कर रहे है, किस तरह से समाज में बात कर रहे हैं, यदि सारी शिक्षा रटने वाली होगी तो सारे समाज में भी इसी तरह की प्रवृति सामने आएगी। और अगर समझने वाली होगी तो मुझे लगता है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व में भी विकास होगा और बदलाव भी आएगा।

राजेश भट्ट : मेरा मत है कि रटने वाला भी याद करने की कोशिश करता है और समझने वाला भी याद करने की ही कोशिश करता है। मैं इन तीनों को एक ही श्रेणी में नहीं रखना चाह रहा हूँ। एक समझना है और एक रटना। पहले हम इन दोनों में भेद-विभेद कर लें। रटना, एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें बच्चा दी गई विषयवस्तु को जस का तस याद कर लेता है परन्तु जब उसका उपयोग करने की बारी आती है, तब रटने वाला बच्चा असफल हो जाता है। सीखने के बारे में ख़ास बात यह है कि सीखे गए ज्ञान के उपयोग के जरिए वह विभिन्न परिस्थितियों में उसका इस्तेमाल कर सके, तो सीखना हुआ है। लेकिन रटने पर, रटे हुए का उपयोग करने में वह असफल हो जाता है।

स्कूली शिक्षा के बारे में मेरा मानना है कि वहाँ रटने की प्रणाली नहीं चल रही है। वहाँ सैद्धान्तिक तरीक़े से बोर्ड पर लिखकर समझाया जा रहा है। यह बात सही है कि वहाँ प्रयोग नहीं हो रहे हैं, लेकिन ऐसा भी नहीं है कि वहाँ केवल रटाया जा रहा है। सिद्धान्तों को बार-बार उदाहरणों के माध्यम से व सवालों के माध्यम से हल करके समझाने की कोशिश की जा रही है। अतः यदि हम केवल यह कहते हैं कि आज के समय में चाहे कोचिंग सेण्टर हों या स्कूल हों, खाली रटा रहे हैं, यह कहना ठीक नहीं है। वे पढ़ा रहे हैं और समझा भी रहे हैं।

"समझाने का दूसरा अच्छा तरीक़ा यह हो सकता है कि बच्चों से प्रयोगों के माध्यम से ज़्यादा-से-ज़्यादा काम कराया जाए ताकि एक ऐसा अधिगम हो जाए जो स्थायी हो, यह आदर्श स्थिति होगी पर ऐसा होता नहीं है।"

समझाने का दूसरा अच्छा तरीक़ा यह हो सकता है कि बच्चों से प्रयोगों के माध्यम से ज़्यादा-से-ज़्यादा काम कराया जाए ताकि एक

ऐसा अधिगम हो जाए जो स्थायी हो, यह आदर्श स्थिति होगी पर ऐसा होता नहीं है। लेकिन कक्षा में बोर्ड पर या कॉपी-पेन से समझा रहे हैं, रटा नहीं रहे हैं। रटना उसे कहते हैं जैसे– बचपन में पहाड़े बच्चों को ज़ोर-ज़ोर से बुलवाकर याद करा दिए जाते थे और उनकी स्मृति में वह पक़्क़े हो जाते थे। वह क्यों हो रहा है और कैसे, उसपर चर्चा कम थी बस पहाड़े याद होने चाहिए। लेकिन समझने वाला ढाँचा ऐसा नहीं है। कक्षा में बच्चों को समझाया जाता है एवं तरह-तरह के सवाल जब बदल-बदल कर दिए जाते हैं तो बच्चे उन्हें हल भी करते हैं। सवाल में थोड़ा-सा घुमाव दे दिया जाए, तो बच्चा उसको पकड़ लेता है और उसको भी हल कर लेता है। लेकिन जिस बच्चे का ध्यान नहीं है, कुछ

“ पूरी व्यवस्था, जिसमें बच्चे, शिक्षक, स्कूल, अभिभावक आदि सभी शामिल हैं, उसी ओर भाग रही है कि छात्र दिए गए 200 या 250 प्रश्नों में से कैसे भी 80 या 90% प्रश्न सही–सही हल कर लें। वह भी निश्चित समयावधि में। ”

भी करो, वह उस बात को नहीं पकड़ पाता है। जैसे– जो बच्चे रटकर पहाड़े याद करते हैं वे एक भी संख्या छूट जाने पर आगे नहीं बढ़ पाते, लेकिन जिन्होंने पैटर्न को पकड़ लिया वे जानते हैं कि आगे कौन-सी संख्या आएगी और क्यों?

एक सामान्य बात कर रहा हूँ कि जब हम कक्षा में कुछ समझा रहे हैं उसका इस्तेमाल बच्चा कर लेता है, कहीं ऐसी समस्या भी आ जाती है जिसका उसने कभी सामना नहीं किया हो, परन्तु उसे भी वह हल कर लेता है। यानी स्कूल में या कोचिंग सेण्टर में, जहाँ उनको पढ़ाया जा रहा है समझने-समझाने की प्रक्रिया होती है। अब कुछ विषय ऐसे होते हैं जिनपर चर्चा-परिचर्चा बहुत ही आवश्यक है। यह चर्चा इकतरफ़ा नहीं होनी चाहिए। स्कूल या कोचिंग सेण्टर की सबसे बड़ी बुराई ही यह है कि चर्चा अकसर इकतरफ़ा ज़्यादा है। जैसा कि अभी चर्चा में भी आया था कि जब छात्रों से कहा गया कि ख़ुद किताब पढ़ो, फिर हम सवाल खड़े करते हैं, पर ऐसा नहीं होता। कोचिंग कक्षाओं में भी ख़ुद पढ़कर सीखने के स्तर पर तो कमी है ही। जिन विषयों में प्रयोग होने चाहिए और प्रयोग के माध्यम से बच्चे की एक समझ विकसित की जानी चाहिए, उसकी भी बहुत कमी है। और उसका कारण ही यही है कि हमारी मूल्यांकन प्रणाली ऐसी हो गई है कि जिसने आईआईटी की परीक्षा में प्रथम स्थान हासिल किया और 600 / 600 लाया, उसने भी ग्यारहवीं और बारहवीं में, यानी कि पूरे दो सालों में, एक भी प्रयोग नहीं किया। पर आईआईटी में सर्वाधिक अंक प्राप्त किए थे और उसे आईआईटी के सबसे बढ़िया संस्थान में प्रवेश भी मिला। हमारा शिक्षा का ढाँचा ही ऐसा है। यह पूरी तरह से वस्तुनिष्ठ प्रश्न पर आधारित है, कोई ख़ास उत्तर क्यों आया? कैसे आया? उसपर बात ही नहीं है, बच्चों को तो बस दिए गए विकल्पों A, B, C, D में से किसी एक पर टिककर उत्तर देना है। अब टिक कैसे हुआ है, वह रटकर हुआ है या समझकर हुआ है या क्या उसपर वास्तव में छात्र ने अच्छा ख़ासा अध्ययन कर रखा है यह मायने नहीं रखता।

पूरी व्यवस्था, जिसमें बच्चे, शिक्षक, स्कूल, अभिभावक आदि सभी शामिल हैं, उसी ओर भाग रही है कि छात्र दिए गए 200 या 250 प्रश्नों में से कैसे भी 80 या 90% प्रश्न सही-सही हल कर लें। वह भी एक निश्चित समयावधि में। जब हमारा लक्ष्य ही बदल गया है, लक्ष्य प्रयोग करना न रहकर वस्तुनिष्ठ और बहुउत्तरीय प्रश्नों को हल करना है तो उसी के अनुरूप बच्चों की सालभर अच्छे से प्रैक्टिस हो रही है। इस प्रैक्टिस में सीखना या लर्निंग नहीं हो रही है या वे समझ नहीं रहे हैं, ऐसा नहीं

कह सकते। समझ तो रहे हैं और तकनीक के अनुसार सवालों को हल भी कर रहे हैं, लेकिन एक आदर्श अधिगम होता है जिसमें छात्र प्रश्न को अलग तरीक़े से देने पर भी हल कर ले वह नहीं हो रहा।

जैसे भौतिकी में ओह्मस-लॉ है। अगर बच्चा एक बार पेपर पर ओह्मस-लॉ करेगा, यानी टेबल बनाएगा, **V** (विभवान्तर) और **I** (धारा**)** में ग्राफ़ बनाएगा, सीधी रेखा आएगी तब वह यह सम्बन्ध निकाल लेगा कि ये दोनों समानुपाती हैं। वह प्रयोग नहीं कर रहा है लेकिन कक्षा में जब शिक्षक उसको समझा रहा है कि एक चालक है, उसमें हम धारा प्रवाहित करते हैं, फिर विभवान्तर आता है। जब धारा बढ़ाते हैं तो विभवान्तर भी उसी अनुपात में बढ़ता है, इसलिए ये दोनों समानुपाती हैं। तब वो लिखेगा **V / I.** अब यदि आनुपातिकता का संकेत हटाना है तो एक स्थिरांक लगाना पड़ेगा, वह स्थिरांक R यानी प्रतिरोध है। ये बिल्कुल सैद्धान्तिक चल रहा है और समझाया जा रहा है और **R = V / I** है । **V** को दुगुना करोगे तब अनुपात स्थिर हो जाएगा। इस तरह उदाहरणों के माध्यम से पूरा ज़ोर लगाकर कक्षा में शिक्षक पढ़ा रहे हैं, समझा रहे हैं और समझ भी विकसित हो रही है। लेकिन केवल सैद्धान्तिक समझ ही विकसित हो रही है। अगर उसने वास्तव में प्रायोगिक रूप से ओह्मस-लॉ किया होता तो वह जीवनभर उसे नहीं भूल सकता था। पर शिक्षक वैसा नहीं करते हैं, वहाँ तो बस यह है कि जैसे-तैसे समझाना है, लेकिन बच्चे महज़ रट नहीं रहे है। इसको मैं रटना भी नहीं कहूँगा। हाँ वे प्रयोग से थोड़े से दूर हैं। इस वजह से जब उसे लागू करने की बात आती है, वहाँ वे ज़रूर पीछे हैं। लेकिन ओएमआर शीट (OMR sheet) में जो प्रश्न आ रहे हैं, उनको वे सफलतापूर्वक हल कर रहे हैं और 95-96 प्रतिशत अंक ला रहे हैं। **पूरा रास्ता ही ऐसा हो गया है कि शिक्षक को जल्दी-से-जल्दी और ज़्यादा-से-ज़्यादा पाठ्यक्रम** कवर करते हुए पढ़ाना है। प्रयोग पर आधारित प्रश्न भी आते हैं और बच्चे ये प्रश्न करते भी हैं क्योंकि उन्होंने समझा तो है पर प्रयोग ग़ायब हैं। प्रायोगिक परीक्षाएँ महज़ औपचारिकता हो गई हैं। प्रायोगिक परीक्षाएँ लेने बाहर से एक शिक्षक आएगा, बिल्कुल औपचारिकता में प्रयोग हो जाएँगे और वह चला जाएगा।

डॉ गिरीश शर्मा : राजेश भट्ट जी की बात से मैं भी सहमत हूँ। मेरी भूगोल की कक्षा में भी बहुत से ऐसे बच्चे आते हैं जिन्होंने कभी कोई प्रयोग नहीं किया है यहाँ तक कि उन्होंने मौसम सम्बन्धी यंत्र भी कभी नहीं देखे हैं। उदयपुर जैसे शहर से पढ़कर आने वाले छात्रों ने फिर भी इन यंत्रों को देखा होगा, लेकिन बाँसवाड़ा, डूंगरपुर जैसे छोटे शहरों के छात्रों ने ये यंत्र कभी देखे ही नहीं होते हैं। हमने बीएड की कक्षाओं के दौरान कुछ यंत्र लगाकर उनका अभ्यास कराने की कोशिश भी शुरू की। जब यंत्रों के प्रयोग करने की विधि का प्रदर्शन किया गया तब बच्चों ने उसे ठीक से देखा और बाद में एक-दो बार रुचि से उसको किया भी। यंत्रों के उपयोग करने के अभ्यास और उनकी उपयोगिता को समझने के लिहाज़ से सोचा गया कि दो बच्चे रोज़ इनका उपयोग करते हुए विभिन्न गणनाएँ लेंगे और प्रार्थना सभा में रोज़ के तापमान, आर्द्रता आदि मौसम की जानकारी सबको देंगे। साप्ताहिक चार्ट भी बना दिया गया था लेकिन वे यह नहीं करते थे। उनको बार-बार बताना पड़ता था, अभ्यास कराना पड़ता था

“ पूरा रास्ता ही ऐसा हो गया है कि शिक्षक को जल्दी–से–जल्दी और ज़्यादा–से–ज़्यादा पाठ्यक्रम कवर करते हुए पढ़ाना है। प्रयोग पर आधारित प्रश्न भी आते हैं और बच्चे ये प्रश्न करते भी हैं क्योंकि उन्होंने समझा तो है पर प्रयोग ग़ायब हैं। ”

इसके बावजूद वे अपने स्तर पर कोई प्रयास नहीं करते। बस एक बार समझ लिया, देख लिया, काफ़ी है। दूसरा– कक्षा में आप कितने ही अच्छी तरह से नोट्स बना कर समझा लो, उस समय लगता है कि उनको बहुत अच्छी तरह से समझ आ रहा है। परन्तु जब परीक्षा का समय आएगा तो वही पासबुक लेकर आएँगे। उसी में से पढ़कर लिखेंगे। परीक्षा के समय भी कहेंगे कि सर, आपने उस दिन हमें जो पढ़ाया था वे नोट्स हमको दे दो, हम फ़ोटोकॉपी करा लें। वे सीधा-सीधा लेना चाहते हैं, अपनी तरफ़ से कुछ समझना ही नहीं चाहते। उनका मक़सद भी यही है कि बस परीक्षा में अच्छे नम्बर ले आएँ। समझ में आ रहा है या नहीं उससे उन्हें कोई मतलब नहीं है।

"मुझे नहीं लगता कि परिस्थितियाँ बहुत ज़्यादा बदली हैं। जिस तरह के सरकारी स्कूल में मैं पढ़ती थी और आज भी जब सरकारी स्कूल में जाकर हम पढ़ाने का काम करते हैं तो स्कूल, पढ़ाने के तरीक़े, सब अमूमन वैसे ही लगते हैं।"

यशोधरा : एक सवाल था कि परिस्थितियाँ बदली हैं क्या? मुझे नहीं लगता कि परिस्थितियाँ बहुत ज़्यादा बदली हैं। जिस तरह के सरकारी स्कूल में मैं पढ़ती थी और आज भी जब सरकारी स्कूल में जाकर हम पढ़ाने का काम करते हैं तो स्कूल, पढ़ाने के तरीक़े, सब अमूमन वैसे ही लगते हैं। जब परिस्थितियाँ नहीं बदलीं तो पढ़ाई का दबाव, ये गला काट प्रतियोगिता और इस तरह की भावनाएँ कैसे जड़ों में बसती जा रही हैं? दबाव है और यह हम सभी महसूस भी कर रहे हैं। मुझे यह दिक़्क़त लग रही है कि एक तरफ़ तो हम कह रहे हैं कि रटाया नहीं जा रहा है, लेकिन वास्तव में जब हम बच्चों के साथ काम कर रहे होते हैं, तब यह महसूस होता है कि बच्चे वास्तव में चीज़ों को रट ही तो रहे हैं। यह इस बात से भी पता चलता है कि अधिकांश बच्चे अपनी भाषा में, अपनी तरह से कोई भी चीज़ समझकर नहीं लिख पा रहे होते हैं। बच्चे कक्षा-दर-कक्षा आगे बढ़ते जाते हैं लेकिन जो अवधारणात्मक समझ उस कक्षा के स्तर पर उनके पास होनी चाहिए वह नहीं होती। पिछली कक्षा या स्तर की अवधारणात्मक समझ की कमी की वजह से उनको उसके आगे की अवधारणा जो पिछली कक्षा या स्तर से जुड़ी है, उसको समझने में भी दिक़्क़त आती है। कुछ छात्र जिनके पास यह समझ आ जाती है वे अपने स्तर पर चीज़ों के साथ संघर्ष करके जुड़ाव बनाते हैं और अपने स्तर पर उत्तर लिखने का प्रयास भी करते हैं। लेकिन जिन बच्चों के पास यह अवधारणात्मक समझ नहीं होती उनके पास रटने के अलावा और कोई चारा नहीं बचता।

अब रही समझने और रटने में अन्तर की बात। यहाँ मैं राजेशजी की बात से सहमत हूँ कि याद करने की प्रक्रिया समझने और रटने दोनों में होती है। समझने में भी कुछ हिस्सा आपको याद करना पड़ सकता है और रटने में तो यह है ही। परन्तु दोनों में फिर भी अन्तर है। मान लीजिए कि कोई अवधारणा है जैसे– ओह्मस-लॉ, अब इसमें विद्युत विभव और विद्युत धारा के बीच के सम्बन्ध को रटा जा सकता है पर अवधारणात्मक समझ नहीं बनेगी क्योंकि अवधारणात्मक समझ के अन्तर्गत जितने भी उप बिन्दु या उप विचार आएँगे, जैसे– विद्युत धारा क्या होती है? विद्युत धारा की दिशा क्या होती है? यह इसी दिशा में क्यों बहती है, प्रतिरोध क्यों होता है और उसकी भूमिका क्या होती है? विद्युत विभव कैसे उससे प्रभावित होता है? आदि रटने में नहीं आएँगे। आप सैद्धान्तिक रूप से इसपर सवाल बनाकर दे दीजिए। रटकर भी ये सवाल वह छात्र कर लेगा लेकिन समझ नहीं

बनेगी। हालाँकि, जिन बच्चों की अवधारणात्मक समझ का ख़ाका मज़बूत है वह भी कुछ चीज़ें याद करते ही करते हैं। जैसे– विभव क्या होता है? धारा क्या होती है? उनकी परिभाषा क्या होती है? क्योंकि मूल्यांकन तो इसी का होना है, अगर आप वे चीज़ें नहीं याद करोगे, वैसा नहीं लिखोगे, तो आपको नम्बर नहीं मिलेंगे। तो वे सारी चीज़ें आपस में जुड़ी हैं। लेकिन मुख्य बिन्दु यह है कि जब रटने वाले छात्र के साथ अनुप्रयोग करने की बात करते हैं, उपयोग की बात करते हैं तब उन सब चीज़ों में वे छात्र ढेर हो जाते हैं। समझने के दौरान जो याद किया जाता है या याद होता है उसमें ऐसा नहीं होता।

मैं उदाहरण देकर बताती हूँ कि ऐसा क्यों हो रहा है? हम बारहवीं के छात्रों के साथ काम कर रहे हैं और उनके साथ हम दो आवासीय शिविर भी कर चुके हैं। हम लोग जीव विज्ञान पढ़ने में उनकी मदद कर रहे थे। हमने पाया कि बच्चे पूरा पाठ पढ़ लेते हैं, प्रश्नों के उत्तर दे लेते हैं, लेकिन जब उनको कहा जाता है कि बताओ इस पाठ में क्या-क्या मुख्य बातें कही गई हैं, क्या आप उन्हें लिख लेंगे, तब यहाँ वे असमर्थ होते हैं। इसी तरह यदि उनको किताब से बाहर का कोई प्रश्न दे दिया जाए तो वे उसका उत्तर नहीं दे पाते। सवाल किताब से हू-बहू हो तो ठीक। हमें समझ आया कि इस स्थिति का कारण रटने की प्रवृत्ति है। रटना इस अर्थ में– धारणा क्या होती है उसको रटना, उसके मुख्य बिन्दु भी रटना और उसको कैसे लिखा जाना है वह भाषा भी रटना। रटने की इस प्रक्रिया में कभी-कभी समझने के सम्बन्ध भी बनते हैं। एक अवधारणा का दूसरी अवधारणा के साथ क्या सम्बन्ध है वे भी बनते हैं या फिर उस अवधारणा के विभिन्न हिस्सों के भी सम्बन्ध बनते हैं। अतः यह द्वन्द्व रहता है कि समझकर याद किया गया है या रटकर, और यह आसानी से पता भी नहीं चलता। बच्चे के साथ काम करते-करते समझ आता है कि उसकी क्या और कितनी समझ है। इसीलिए शिक्षक प्रशिक्षण या ऐसे अन्य मौक़ों पर जब हम रटने और समझने की बात करते हैं तो शिक्षक और प्रशिक्षक भी यही कहते हैं कि हम भी तो उसी सिस्टम से पढ़कर आए हैं। हम भी तो रटते थे या हम भी तो याद करते थे। पर उस दौरान यदि हम उस पूरी प्रक्रिया पर प्रतिबिम्बित करें जिससे हम पढ़कर आए या कोई भी व्यक्ति पढ़कर आया है, तब यह समझ में आता है कि जब हम वास्तव में रट रहे थे तब कहीं-न-कहीं हम कोई-न-कोई सम्बन्ध स्थापित कर रहे थे। उसकी वजह से उस अवधारणा विशेष का या उस परिस्थिति विशेष का ख़ाका हमारे दिमाग़ में आज भी मज़बूती से उपस्थित है। अगर वे सम्बन्ध नहीं होते तो वह ख़ाका हमारे दिमाग़ में नहीं होता।

गलाकाट प्रतियोगिता है और बच्चों पर उसके असर को हम देख ही रहे हैं लेकिन साथ ही साथ हमारे समाज का स्वरूप भी बदल रहा है। प्रतिशत की दौड़ और कुछ चुनिन्दा कैरियर की दौड़ में अभिभावक भी अपने बच्चों को दाँव पर लगा रहे हैं। कुछ चुनिन्दा व्यवसायों के अलावा भी आगे बढ़ने के बहुत सारे अवसर होते हैं, जैसे– कला या संगीत के क्षेत्र में अपना कैरियर चुनना, लेकिन इनमें मुझे अवसर बहुत कम बनते हुए नज़र आ रहे हैं। क्योंकि विद्यालय में न तो इस विषय पर चर्चा होती है, न ही माहौल मिलता है और न ही विद्यालय के बाहर छात्रों को इस तरह का कोई अवसर और प्रोत्साहन मिल रहा है। कला या संगीत

" गलाकाट प्रतियोगिता है और बच्चों पर उसके असर को हम देख ही रहे हैं लेकिन साथ ही साथ हमारे समाज का स्वरूप भी बदल रहा है। प्रतिशत की दौड़ और कुछ चुनिन्दा कैरियर की दौड़ में अभिभावक भी अपने बच्चों को दाँव पर लगा रहे हैं। "

जैसे सभी क्षेत्र ग्रीष्मकालीन अवकाश में छोटे-छोटे कोर्स तक सीमित होकर रह गए हैं। जो सर्वांगीण विकास की बात हम कर रहे हैं वह समझने और रटने के फेर में अन्तर नहीं कर पाने की वजह से अवरुद्ध हो रहा है।

शहनाज़ : मेरा मानना है कि समझने वाले की पढ़ाई जिस साल में उसने पढ़ा है उस पूरे साल में पूरी होती है। दूसरे शब्दों में कहें तो समझ धीरे-धीरे बनती है उसमें समय लगता है, लेकिन जब समझ आता है तो पूरा आता है, जैसे बात को पूरा समझकर अपने अन्दर उतार लिया है। रटने वाले की स्थिति होती है कि उसने आज रटा है, वह परीक्षा देगा, अंक आ जाएँगे और फिर वह भूल जाता है। कक्षा में और अपने आसपास रहने वाले बच्चों में रटना मैंने दो तरीक़ों से देखा है– कुछ बच्चे रटते चले जाते हैं और वे जो रटा है उसको साथ-साथ समझ नहीं रहे होते हैं, लेकिन जैसे अभी आपने कहा कि बार-बार उसी को पढ़ते रहने से उनको कुछ बातें थोड़ी समझ में आने लगती हैं। जो उनके पढ़ने या रटने का तरीक़ा है उसमें कहीं-न-कहीं चीज़ों में कुछ सम्बन्ध दिखता है, जुड़ाव दिखता है और वह चीज़ों को समझने लगता है। रटना वह होता है जिसमें कहीं कोई सम्बन्ध नहीं होता है, उसको बस पहली से आख़िरी पंक्ति तक 10-20 बार पढ़ना है और रटना है। कक्षा में भी बच्चे सामान्यतः ऐसा ही करते हैं। यानी याद करने वाली स्थिति दोनों में है। पर मैंने यह भी पाया है कि यदि छोटी कक्षाओं से ही समझने पर ज़ोर हो और स्कूल का पैटर्न ऐसा हो कि हर चीज़ को करने का, देखने का, समझने का उनको पूरा समय मिले, तभी समझना होता है । जैसे– शब्दों और वाक्यों की बजाय पूरी कविता या पूरी कहानी पढ़ना है और विज्ञान में कुछ सीख रहे हैं तो उसे करके देखना या गणित में कुछ पढ़ रहे हैं तो उसमें पैटर्न पकड़ना आदि। यदि बार-बार ऐसे अवसर मिलें तो छोटी कक्षा से ही बच्चे समझना शुरू कर देते हैं और बड़ी कक्षा में आकर भी उनका समझने का तरीक़ा वैसा ही रहता है, तब वह रटता नहीं है। छात्र कहता है कि मुझे समझाओ कि यह क्या है? कैसे करना है? और उन चीज़ों को वह साल में 2-3 बार होने वाली परीक्षा में करता है तो उसको वे चीज़ें अच्छे से समझ आई हुई होती हैं और वापस पूछने पर भी वह उसका जवाब देता है। वहीं जो बच्चे शुरुआती कक्षाओं से ही रटते आते है इसमें पालकों और शिक्षक दोनों की भूमिका होती है। शिक्षक देखते हैं कि पढ़ाने के लिए समय कम है, अतः बढ़िया है इस चीज़ को ऐसे याद कर लो। बच्चों को भी बार-बार याद करने के लिए कहा जाता है। और अभिभावक भी यह करते हैं कि यह तो अभी छोटे हैं क्या समझेंगे, इनको रटा दो, और वे भी छोटी कक्षा से ही बच्चों को रटाना शुरू कर देते हैं। वे कहते हैं कि बच्चे जब बड़े होंगे तो धीरे-धीरे समझ ही लेंगे। अभी ये बातें इनकी समझ से बाहर हैं। वह बड़ी क्लास में आकर भी रटता ही है। और फिर उच्च शिक्षा में भी यही पैटर्न बना रहता है।

“ कक्षा में समझना और रटना बहुत कुछ शिक्षक और बच्चों के बीच के रिश्ते पर भी निर्भर करता है और कक्षा के माहौल पर भी कि किस तरह का माहौल है, क्या पढ़ाने वाले को भी मज़ा आ रहा है और बच्चों को भी पढ़ने में मज़ा आना चाहिए। ”

मेरा यह भी मानना है कि कक्षा में समझना और रटना क्या होगा, यह बहुत-सी अन्य बातों पर भी निर्भर करता है। यह बहुत कुछ शिक्षक और बच्चों के बीच के रिश्ते पर भी निर्भर करता है और कक्षा के माहौल पर भी। क्या पढ़ाने वाले को भी मज़ा आ रहा है और बच्चों को भी पढ़ने में मज़ा आना चाहिए। मैंने हमेशा यह देखा है कि कुछ शिक्षक जो पर्याप्त समय लेकर बच्चों

को पढ़ाते-लिखाते हैं, बच्चों के साथ गतिविधियाँ करते हैं या बच्चों को कुछ करने के लिए कहते हैं, उन शिक्षकों को भी कई बार दूसरे शिक्षक रोकते हैं, कि यह सब करने में बहुत सारा समय जा रहा है और आपका कोर्स भी पूरा नहीं हो रहा है। परीक्षा के पैटर्न, मूल्यांकन के तरीक़े आदि का पालन करते-करते कई बार शिक्षक भी समयाभाव के कारण याद कराने के लिए मज़बूर हो जाते हैं। दूसरी तरफ़ पासबुक वाला तरीक़ा है। इनका आसानी से उपलब्ध होना और फिर शिक्षक के पास भी इतनी समझ न होना, ये सभी चीज़ें मिलकर स्थिति को और मुश्किल कर देती हैं। तब समझ को केंद्र में रखकर काम करने वाले शिक्षक भी रटने और कोर्स पूरा करने पर आ जाते हैं।

दूसरी तरफ़, हर कक्षा में समझने वाले बच्चे भी होते हैं। मैंने देखा है कि ऐसे बच्चे किसी-न-किसी तरह धीरे-धीरे उन चीज़ों पर काम करते हैं कि यह बात हमको समझ में ही नहीं आ रही है, कितने दिन से रटे जा रहे हैं या शिक्षक के पास बार-बार जाते हैं कि आप इसको मुझे ऐसे समझा दीजिए ताकि मैं इसको अच्छी तरह से याद रख लूँ। मेरा अनुभव है कि जब बच्चों को समझाया जाता है तो वे सहजता से उन चीज़ों को सीखते हैं और यदि प्रश्न बदलकर दिए गए हैं तो उन्होंने उनका भी उत्तर दिया है। जब बच्चे समझ लेते हैं तो अपनी भाषा में भी लिखते हैं।

विज्ञान की एक कक्षा में प्रयोग करने के दौरान बच्चों ने मुझसे पूछा कि क्या विज्ञान ऐसे पढ़ते हैं? हमने तो ऐसे कभी पढ़ा ही नहीं या हमको तो किसी ने ऐसे कभी समझाया ही नहीं। प्रयोग के लिए आवश्यक सामग्री भी हमने आसपास से उसी समय एकत्रित की थी। हालाँकि, इस तरह से कार्य करने पर कई बार मैं ख़ुद भी परेशान हुई हूँ क्योंकि कुछ कार्यों में बहुत सारा समय निकल जाता है और इसलिए मेरा पाठ्यक्रम भी पूरा नहीं हो पाता है। दूसरी बात यह है कि रटने के बग़ैर भी पढ़ाई सम्भव है, परन्तु उसके लिए जितना समय कक्षा में शिक्षक को देना पड़ता है उतना उपलब्ध नहीं हो पाता है। जब बहुत-सा कोर्स पूरा नहीं हो पाता, तो इस स्थिति में बच्चों को पहले ही कह दिया जाता है कि अमुक पाठों को रट लो और जो पढ़ने और समझने वाले पाठ हैं उनको हम धीरे-धीरे करते हैं। कई बार इसके लिए दो-दो पीरियड साथ-साथ चाहिए होते हैं और इसकी भी व्यवस्था करनी पड़ती है। समझने वाले पाठों पर कुछ इस तरह से काम होता है– जैसे कोई प्रयोग करना है तो बच्चे को पूरा पैराग्राफ़ पढ़ने को कहना और पूछना कि उसमें क्या कहा गया है ? निर्देश पढ़कर बताओ कि क्या-क्या करने को कहा गया है? बच्चे चरणबद्ध तरीक़े से बताते हैं कि इसमें पहले सामग्री लानी है, फिर उसे ऐसे सेटअप करना है, तब यह करना है आदि।

"मेरा अनुभव है कि जब बच्चों को समझाया जाता है तो वे सहजता से उन चीज़ों को सीखते हैं और यदि प्रश्न बदलकर दिए गए हैं तो उन्होंने उनका भी उत्तर दिया है। जब बच्चे समझ लेते हैं तो अपनी भाषा में भी लिखते हैं।"

इस तरह से पूरा प्रयोग होगा और फिर सामग्री सामने है तो बच्चे प्रयोग करके देखें। लेकिन सभी पाठों को इस तरह से समझकर पढ़ने और उसके प्रयोग करवाने का समय किसी स्कूल के पास नहीं है। एक साथ दो पीरियड मिलना भी आसान नहीं है। इसलिए सारी स्थितियाँ गड़बड़ा जाती हैं। यानी हम समझने वाली स्थिति से शुरू करते हैं धीरे-धीरे आगे बढ़ते हैं, लेकिन अन्त तक आते-आते सारा मामला ही रटने पर ख़त्म हो जाता है।

राजेश भट्ट : प्रतियोगिता की बात करें तो ज़्यादातर सरकारी स्कूलों में प्रतियोगिता वाली

स्थिति ही नहीं बन पा रही है। बच्चे समझ भी रहे हैं, अच्छे परिणाम भी ला रहे हैं और पढ़ना भी चाहते हैं, मगर फिर भी उनको लगता है कि उनको मौक़ा नहीं मिल रहा है क्योंकि वे किसी भी तरह से अपने स्तर पर उस प्रतिस्पर्धा (competition) में नहीं जा पाते। आजकल जो कोचिंग चल रही हैं, उनमें बच्चे ज़रूर अपने स्तर से रट रहे हैं, पढ़ रहे हैं, लेकिन कहीं-न-कहीं जो रटा है, याद किया है उसे लागू करके भी देख रहे हैं क्योंकि ज्ञान के उपयोग आधारित, यानी अनुप्रयोग (application) वाले प्रश्न तो आते ही हैं। इसलिए बच्चों को लगता है कि जब मौक़ा आएगा तो हम अनुप्रयोग भी कर लेंगे। शायद महाविद्यालय के स्तर पर कर भी रहे हैं परन्तु ग्यारहवीं और बारहवीं के स्तर पर तो वे रट ही रहे हैं।

''बच्चों में यह आत्मविश्वास आना चाहिए कि वे चीज़ों को ठीक लिख रहे हैं, वे उसको अपनी तरह से लिख रहे हैं, और यह कि अपनी तरह से लिखना ही बेहतर है, न कि हू-बहू किताब जैसा लिखना।''

जब इन बच्चों से मैंने पूछा कि वे क्यों इस तरह की प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए कोशिश नहीं करते, तो उनका कहना था कि समझ तो हम जाते हैं लेकिन उतना अभ्यास नहीं कर पाते जितना कि इन परीक्षाओं के लिए ज़रूरी है। उनको भी तब लगने लगता है कि रटना ही बेहतर है क्योंकि कोचिंग कक्षाओं में जाने वाले सभी बच्चे यही कर रहे हैं और आगे बढ़ रहे हैं। यानी तुलनात्मक रूप से देखने पर उनको लगता है कि रटी हुई चीज़ ज़्यादा सफलता दे रही है और समझने वाले समझ-समझ कर वहीं के वहीं रह गए हैं। यहाँ तक कि उनको तो यह मौक़ा भी नहीं मिल पा रहा कि वे फ़ॉर्म भी भर पाएँ।

शहनाज़ : मैं माध्यमिक कक्षाओं को पढ़ाती हूँ। मुझे वहाँ दोनों तरफ़ से देखना पड़ता है। कक्षा एक से पाँच के जो बच्चे आ रहे हैं वे रटने पर बहुत ज़्यादा आश्रित होते हैं। जैसा कि मैंने पहले भी कहा कि अभिभावक भी रटने पर ही ज़ोर देते हैं और समझ की ज़िम्मेदारी शिक्षक पर डाल देते हैं। जब पाँचवी-छठी में हमारे पास बच्चे आते हैं और जैसा कि अमूमन मैं कक्षा में करती हूँ– बच्चों को पूछती हूँ कि विज्ञान में आप प्रयोग करते रहे हो कि वायु स्थान घेरती है तो प्रयोग में जो पढ़ा इसका क्या मतलब है? उनको नहीं पता, क्योंकि वे इस बात को रटते चले जाते हैं। पर जब हम प्रयोग करवाते हैं और फिर मैं उनसे पूछती हूँ कि अब मुझे बोलकर बताओ कि तुमने क्या-क्या किया है? बच्चे सहजता से बोलते हैं, पर तब भी उनको यह लगता है कि यदि हम ऐसा लिखेंगे तो क्या हमें इसके नम्बर मिलेंगे? क्योंकि किताब में तो ऐसा नहीं लिखा हुआ है। और तब उनको यह भी समझाना पड़ता है कि वही बात किताब में भी लिखी हुई है, पर उसकी भाषा किताब की भाषा है। और तुम इसे अपनी भाषा में लिख रहे हो, बस यही मुख्य फ़र्क़ है। बच्चों में यह आत्मविश्वास आना चाहिए कि वे चीज़ों को ठीक लिख रहे हैं, वे उसको अपनी तरह से लिख रहे हैं, और यह कि अपनी तरह से लिखना ही बेहतर है, न कि हू-बहू किताब जैसा लिखना। बच्चों ने स्वयं प्रयोगों को करके अपनी फ़ाइल में और कॉपी में अपनी भाषा में लिखना शुरू किया। जब इस तरह के कुछ अभ्यास मैंने उनके साथ किए तो विज्ञान में बच्चे किताब से हटकर अपने-आप लिखने लगे। इससे पहले उनको डर था कि किताब से हटकर कुछ लिखेंगे तो हमको कोई नम्बर नहीं मिलेंगे। इसलिए ऐसी चीज़ों को करने के लिए हमें बच्चों का पूरा विश्वास भी जीतना पड़ता है। बच्चों को पासबुक की आदत भी शुरुआत में ही हो जाती है। उनको ऐसा लगता है कि अगर इसमें से हमने लिखा और याद कर लिया

तभी हमें अच्छे नम्बर मिलेंगे। और दूसरे तरीक़े से करते ही हमारे नम्बर कट जाएँगे। वहाँ भी उनको यह विश्वास दिलाना पड़ता है कि ये दोनों तरीक़े अलग हैं, पर तुम जो कर रहे हो इसके भी पूरे नम्बर मिलते हैं। तब जाकर बच्चों में यह आत्मविश्वास आता है कि वे ख़ुद भी इसको पढ़कर लिख सकते हैं।

रजनी द्विवेदी : यह सब चर्चा रटने, याद करने और समझने में क्या फ़र्क़ है, इससे शुरू हुई थी। अभी तक की चर्चा में मुख्य रूप से ये बिन्दु रखे गए हैं–

पहला तो यह माना गया है कि प्रयोग करने से समझना बेहतर होता है। यदि बच्चा ज्ञान को प्रयोग में लाता है तो इसका मतलब है कि उसको समझ में आ गया है लेकिन रटने पर समझ नहीं आता है। दूसरा बिन्दु यह है कि सैद्धान्तिक समझ और व्यावहारिक समझ अलग-अलग हैं। तीसरा हम यह मानते हैं कि कई चीज़ें रटते-रटते समझ में आने लग जाती हैं। और चौथा यह कि कक्षा में सीखने की ऐसी प्रक्रिया जिसमें समझने पर ज़ोर हो, यह बहुत-सी अन्य बातों पर भी निर्भर करती है जैसे– शिक्षक और बच्चे के सम्बन्ध, कक्षा का माहौल, अभिभावकों की अपेक्षाएँ आदि।

रजनी द्विवेदी : यहाँ इस विषय पर चर्चा महत्त्वपूर्ण होगी कि 'समझ' से हम क्या समझते हैं? उसमें क्या-क्या शामिल होगा?

राजेश भट्ट : एक उदाहरण देना चाहूँगा। मान लीजिए कि खिचड़ी बनानी है। एक माँ अपने बच्चे को काग़ज़ पर समझा रही है कि खिचड़ी ऐसे बनेगी और बच्चे ने उस प्रक्रिया को बिल्कुल रट लिया है। हो सकता है कि एक माँ कहे, बैठकर देखो और समझो। मैं बोल भी रही हूँ और तुम्हारे सामने खिचड़ी बनाकर भी बता रही हूँ। इस तरीक़े में सीखना और बेहतर होगा क्योंकि प्रयोग के तौर पर वह उसको देख रहा है कि खिचड़ी ऐसे बनी। तीसरी प्रक्रिया यह हो सकती है कि बच्चों को उस पूरी प्रक्रिया में शामिल कर लें। तुम पहले तपेली लाओ, अब इसमें तेल डालो, फिर इसको गर्म करते हैं, अब इसमें मसाला डालो आदि। इस प्रकार उनके हाथों से होते हुए खिचड़ी बनेगी। इन तीनों प्रक्रियाओं में पहली में समझ विकसित होने की सम्भावना बहुत ही कम है। जिस बच्चे ने उसको रटा है वह सिर्फ़ खिचड़ी ही बना पाएगा लेकिन जिस बच्चे ने समझा है वह जब उसका उपयोग करके देखेगा और पाएगा कि गर्म पानी में चावल पक जाता है तो वह यह भी सोच लेगा कि मैं आलू की सब्जी भी ऐसे ही बना सकता हूँ। यानी समझने वाला उसका उपयोग और कहीं-न-कहीं ज़रूर करेगा, क्योंकि उसको मूल अवधारणा समझ में आ गई है। तो जो समझ

"यदि शिक्षक सक्रिय और नवाचारी है और हर कक्षा में कुछ नया करने की कोशिश करता है तो बच्चे रुचि लेकर ज़्यादा सीखेंगे।"

बनी है वह माँ (स्कूल में सिखाने वाले शिक्षक) के समझाने के तरीक़े पर निर्भर करेगी। यह हो सकता है कि बाक़ी दो प्रक्रियाओं में भी बच्चा यदि रटने वाला होगा तो उसकी भी कुछ समझ तो विकसित होगी ही।

अब आई सिद्धान्त की बात। जब हम विज्ञान के सिद्धान्त समझा रहे होते हैं तब कई बच्चे इसे एक बिल्कुल सेट पैटर्न में कि R = V / I* है, मुझे V (विभवान्तर) रखना है तो R (प्रतिरोध) आ जाएगा और V को दुगुना करूँगा तो R पर क्या असर होगा यह उसको पता नहीं है। वह बस सूत्र में रखकर देखेगा। पर जिसने सिद्धान्त को समझ लिया है वह कहेगा कि V को दुगुना

करेंगे तो। (धारा) स्वतः ही दुगुनी होती है और R स्थिर होगा। ओह्मस-लॉ में R स्थिर होता है। यदि आप घुमा-घुमा कर बात करेंगे तब भी R में बदलाव नहीं हो सकता है चाहे V में आप कुछ भी करो। लेकिन जैसे ही V बदलोगे, R भी बदल जाएगा। जिसने रटा है यदि उसको आप कहोगे कि V को आधा किया तो R पर कितना असर होगा, यह सुनकर उसके दिमाग़ पर झटका लगेगा क्योंकि उसने उस क़ायदे या नियम को सिर्फ़ रट लिया है।

जैसा कि मैंने पहले भी कहा कि याद करना एक ऐसी प्रक्रिया है जो रटने और समझने दोनों में होती है। रटने वाला बच्चा भी याद करेगा और उस विषयवस्तु को अपने मस्तिष्क में कहीं-न-कहीं जगह देगा। क्योंकि याद करने का मतलब ही है कि उसने जो भी रटा है, पढ़ा है, देखा है, समझा है या प्रयोग किया है वह उसे अपनी स्मृति में रखना है। यह बात अलग है कि रटने वाले को उस चीज़ को अभिव्यक्त करते समय अपने दिमाग़ पर थोड़ा ज़्यादा ज़ोर देना पड़ेगा। हो सकता है कि दो-चार महीने बाद वह बिल्कुल धूमिल भी हो जाए। लेकिन जिसने प्रयोग करके व ख़ुद भी पढ़कर समझा है उसके लिए वह विषयवस्तु ज़्यादा स्थाई हो जाती है। और इसी वजह से शायद ज्ञान के अनुप्रयोग में भी रटने वाला पीछे ही रहेगा।

"जिसने प्रयोग करके व ख़ुद भी पढ़कर समझा है उसके लिए वह विषयवस्तु ज़्यादा स्थाई हो जाती है। और इसी वजह से शायद ज्ञान के अनुप्रयोग में भी रटने वाला पीछे ही रहेगा।"

फिर भी मैं कहूँगा कि कक्षा में सिर्फ़ रटाया जाता है, यह कथन ठीक नहीं है। कक्षा में सैद्धान्तिक रूप से समझाया जाता है। जितनी भी प्रतियोगी परीक्षाएँ हो रही हैं, उनमें यह नहीं है कि प्रश्न सिर्फ़ किताब से ही आ रहे हैं, उनमें घुमाव वाले प्रश्न भी आते हैं जिन्हें बच्चे हल कर रहे हैं, तभी तो वे 96, 97% ला रहे हैं। सीबीएसई के भौतिकी के प्रश्न-पत्र के बारे में ख़बर थी कि परिणाम ख़राब रहे उसके बावजूद 98% नम्बर भी आए हैं। प्रश्न-पत्र इसलिए ख़राब हो गया क्योंकि कई सारे प्रश्न अनुप्रयोग आधारित (application based) थे, बच्चों ने उस तरह से तैयारी ही नहीं की थी। कई बच्चे नहीं कर पाए, पर कई बच्चों ने किया भी। क्योंकि सीखने सिखाने की प्रक्रिया शिक्षक और प्रत्येक बच्चे पर निर्भर करती है, बच्चा चीज़ों को कैसे आत्मसात कर रहा है और शिक्षक उनको कैसे प्रस्तुत कर रहा है, कैसे समझा रहा है ? व्यावहारिक दृष्टि से देखें तो हर चीज़ को स्कूल में एक दिए गए कालांश में प्रयोग के माध्यम से करना सम्भव ही नहीं है। न ही यह सम्भव है कि समझ न आने पर शिक्षक बार-बार उसको ठीक से, प्यार से, मोहब्बत से, उदाहरणों के माध्यम से उसकी व्याख्या करे, समझाए और सुनिश्चित करे कि समझ बच्चे के दिमाग़ में चली जाए। फिर जब भी मौक़ा पड़े वह उसका उपयोग करे और नए-नए सवालों को हल करे।

रजनी द्विवेदी : बच्चे 98% अंक ला रहे हैं। लेकिन जैसा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एनसीएफ) 2005 में कहा गया है कि बच्चों में विज्ञान के कौशल और वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी विकसित करना है। बच्चे विज्ञान पढ़ तो रहे हैं, आईआईटी जैसे संस्थानों में भी जा रहे हैं लेकिन वैज्ञानिक नज़रिया पैदा करें, विज्ञान में शोध करें, ऐसा नहीं हो पा रहा है। आपने कहा कि छात्र बोर्ड पर सैद्धान्तिक रूप से समझ रहा है, क्या ऐसा कुछ भी है जो सैद्धान्तिक रूप से समझने के बाद भी वह समझ नहीं रहा है? क्या ज्ञान का अनुप्रयोग इस सैद्धान्तिक समझ में शामिल है? और शामिल है तो किस हद तक? जैसा कि आपने कहा कि ज्ञान का अनुप्रयोग,

समझ का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है।

समझ को थोड़ा और खोलने की ज़रूरत है कि उसमें क्या-क्या शामिल है? क्या उसमें सिर्फ़ सैद्धान्तिक समझ ही है या कुछ और है? हम इसका विश्लेषण करें कि बच्चे अपने आसपास के पर्यावरण के बारे में सवाल पूछें और किन्हीं चीज़ों के बीच में सहसम्बन्ध देखकर सम्बन्ध बना सकें, ऐसी चीज़ें क्यों नहीं कर पा रहे हैं?

डॉ गिरीश शर्मा : मैंने शुरुआत में कहा था कि बच्चे ख़ुद पढ़ना नहीं चाहते, बाक़ी साथियों ने भी कहा कि हम बच्चों को ख़ुद से पढ़ने और समझने के अवसर निर्मित करने की कोशिश करते हैं, लेकिन तब हमें पाठ्यक्रम पूरा करने का समय ही नहीं मिलता।

बच्चे में समझ विकसित करने के लिए बहुत धैर्य भी चाहिए। यदि पाठ्यक्रम पूरा कराने को ही अन्तिम ध्येय मानकर चलेंगे तो रटने वाली प्रवृत्ति की ओर ही बढ़ेंगे। समझने के लिए सबसे ज़रूरी है कि बच्चा ख़ुद भी उस पाठ को पढ़े, साथ ही यह ज़रूरी नहीं है कि वह पाठ तक ही सीमित रहे, क्योंकि पाठ्यपुस्तकों की एक सीमा है। हो सकता है उसमें एक पैराग्राफ़ में संकल्पना को संक्षिप्त में समझाया गया हो, लेकिन समझ विकसित करने और उसको पुख़्ता करने के लिए उस संकल्पना से सम्बन्धित कोई-न-कोई दूसरा अतिरिक्त व्याख्यान भी उसको पढ़ने के लिए देना पड़ेगा। शिक्षक का पढ़ाना ज़रूरी है लेकिन उतना ही ज़रूरी है कि बच्चा ख़ुद से पढ़े, ख़ुद चीज़ों को करे, जितना ज़्यादा-से-ज़्यादा वह ख़ुद पढ़ेगा उतनी ही उसकी समझ बढ़ेगी। शिक्षक के पास जितना है, उतना वह देने की कोशिश करेगा। लेकिन यह समझने की ज़रूरत है कि बच्चे में क्षमता भी ज़्यादा होती है और कोशिश करने का जज़्बा भी ज़्यादा होता है और वह तमाम चीज़ों को सीखने की इच्छा भी रखता है। साथ ही हमको बच्चों पर विश्वास करना पड़ेगा, उनपर छोड़ना पड़ेगा। इसमें समय लग सकता है। हो सकता है वे पहली क्लास में नहीं सीखें दूसरी क्लास में सीखें, दूसरी में नहीं तीसरी में सीखें या पाँचवी में सीखें या बारहवीं तक आकर सीखें। लेकिन जो वे ख़ुद से सीखेंगे वह ज़्यादा सही रहेगा, बजाय इसके कि समझ नहीं आ रहा है तो यह कहें कि रट लो।

हमें बच्चों को पाठ पढ़ने, उसपर प्रश्न पूछने, अपने भ्रम और कठिनाइयों को रखने का समय तो देना ही पड़ेगा, जब तक यह नहीं होगा तब तक बच्चे को पहले की संकल्पना और उसके बाद की संकल्पना समझ में नहीं आएगी। इससे उसका सहसम्बन्ध नहीं बनेगा, उसकी पृष्ठभूमि नहीं बनेगी, तो फिर रटने वाली प्रवृत्ति ज़्यादा बनेगी, समझने वाली नहीं। सैद्धान्तिक और व्यावहारिक समझ की बात करें तो व्यवहार में इसे वह तब ला पाएगा जब वह ख़ुद से इसे करेगा। उदाहरण के लिए, अकसर पर्यावरण की कक्षा में यह मुद्दा आता ही है कि अपने आसपास साफ़-सफ़ाई होनी चाहिए, कचरा नहीं होना चाहिए वग़ैरह। पर क्या स्कूल में कभी करवाते हैं कि आप साफ़ करो या अपने घर व आसपास की सफ़ाई रखो। घर में उसको सफ़ाई के लिए बोलते नहीं हैं, लेकिन हम कहते हैं कि होना चाहिए। यह सब इसलिए हो रहा है कि हम उसको परीक्षा की दृष्टि से देख रहे हैं, रटने की दृष्टि से देख रहे हैं।

“ बच्चे में समझ विकसित करने के लिए बहुत धैर्य भी चाहिए। यदि पाठ्यक्रम पूरा कराने को ही अन्तिम ध्येय मानकर चलेंगे तो रटने वाली प्रवृत्ति की ओर ही बढ़ेंगे।”

रजनी द्विवेदी : आपने कहा कि लक्ष्य बदल गया है और उसकी वजह से यह स्थिति है।

मुख्य रूप से कक्षा ग्यारहवीं और बारहवीं में तो ज़्यादा फ़ोकस रटने और अभ्यास पर ही है। शुरुआत से ही ऐसा क्या हो कि आपको भी इस तैयारी को करवाने में अलग चीज़ें करनी पड़ें और आपको भी मज़ा आए कि मैं भी कुछ-कुछ आगे बढ़ रहा हूँ।

राजेश भट्ट : उसका कारण प्रतियोगी परीक्षाएँ और स्पर्धा है। बच्चे ने जीवविज्ञान लिया है और उसको डॉक्टर बनना है। इसके लिए उसको एक प्रतियोगी परीक्षा देनी है और उसे पास करना ही है। प्रश्न-पत्र सेट है, बहुविकल्पीय प्रश्न हैं और एक उत्तर चुनना है। यही पैटर्न है। प्रयोग छोड़ो, जो जितने ज़्यादा नए-नए सवाल सीखकर, समझकर करेगा उसको फ़ायदा होगा। यदि वह एक ओह्मस-लॉ के लिए प्रयोगशाला में चला जाएगा और हर दिन 4 घण्टे तक उसके पीछे पड़ा रहेगा और 5 दिन तक यही काम करेगा तो कोर्स भी पूरा नहीं होगा और वह पिछड़ जाएगा। दूसरा तरीक़ा यह हो सकता है कि बोर्ड पर ठीक से समझा दिया जाए और फिर उससे नए-नए सवाल करवाए जाएँ। यह बात तो सही है कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित नहीं हो रहा है, लेकिन तात्कालिक लक्ष्य यानी प्रतियोगी परीक्षा को पास कर लेना पूरा हो रहा है। हमारी परीक्षा प्रणाली ही ऐसी है।

''यह बात सही है कि बच्चा जो कुछ प्रयोग करके सीखेगा और उससे जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित होगा, उसका मुक़ाबला ही नहीं है। वह कुछ करेगा, उसमें समय लगाएगा, उसमें धैर्य होगा, वह बहुत-सी बातें सीख लेगा।''

यदि परीक्षा प्रणाली ऐसी होती कि आपकी प्रायोगिक परीक्षा भी होगी और आपको वहाँ आकर प्रयोगशाला में एक प्रयोग करना पड़ेगा और उस प्रयोग के अवलोकन और उसके निष्कर्षों को सबके सामने रखना पड़ेगा, तब शायद वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित होता। अब हमारी परीक्षा प्रणाली ऐसी है कि बच्चे को वहाँ 90 और 180 प्रश्न दिए गए हैं और निश्चित समय में उसे ये प्रश्न हल करने हैं। अब इसकी तैयारी तो ऐसे ही हो सकती है कि सारे सूत्र याद हों, पहाड़े याद हों, प्रश्नों को करने का बहुत अभ्यास हो आदि। शिक्षक को भी उन परीक्षाओं में पास करवाने के लिए बच्चे को वैसा ही पढ़ाना है, परन्तु यह बात सही है कि बच्चा जो कुछ प्रयोग करके सीखेगा और उससे जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित होगा, उसका मुक़ाबला ही नहीं है। वह कुछ करेगा, उसमें समय लगाएगा, उसमें धैर्य होगा, वह बहुत-सी बातें सीख लेगा, उसमें कौशल विकसित होगा, लेकिन यह तो आदर्श स्थिति है। पर यथार्थ में रोजी-रोटी के लिए तो कुछ बनना है।

यहाँ तक कि वैज्ञानिक बनने के लिए होने वाली प्रवेश परीक्षाओं में भी ऐसा ही हो रहा है। वहाँ पर भी कोई प्रयोग नहीं करवाए जा रहे हैं, वहाँ भी सैद्धान्तिक सवाल और बहुउत्तरीय प्रश्न ही होते हैं।

राजेश भट्ट : प्रतियोगिताओं और स्पर्धा का कारण है कि उतनी रिक्तियाँ ही नहीं हैं जितने ज़्यादा शिक्षा प्राप्त लोग हैं। दूसरी बात, पढ़ाई पर बहुत ज़्यादा फ़ोकस होने लग गया है, बच्चे खेल से दूर हैं, उनको रोज़ पढ़ना है और रोज़ नए-नए सवाल मिल रहे हैं, वह उससे बाहर ही नहीं जा पा रहे हैं। स्वाभाविक रूप से उनका दूसरी तरफ़ सामाजिक रुझान तो कम हो ही रहा है और उसकी सारी ऊर्जा सवालों में लग रही है, तो वहाँ उसकी उपलब्धि का स्तर 75 से 95 प्रतिशत पर चला गया। लेकिन उसके सामाजिक सरोकार और रिश्ते सब उसके जीवन से ग़ायब हो गए हैं। बच्चे अच्छे नहीं हैं ऐसा भी नहीं है। आज के नए-नए बच्चे जो हैं, जैसे ही उनको मौक़ा मिलता है काम करने का, वे अपने ज्ञान का उपयोग करके वहाँ पर अच्छे-अच्छे काम कर रहे हैं। तो खाली यह भ्रम भी हमारे मन में

न रहे कि सारी प्रणाली ही ऐसी है कि जिसमें बच्चे खाली रट रहे हैं, कोई रचनात्मकता नहीं है और नए अन्वेषण भी नहीं हो रहे हैं। नए ज्ञान का प्रयोग करके नए-नए अन्वेषण हो रहे हैं, उसको नकारा नहीं जा सकता। लेकिन 'समझ' के लिए तो यही सही है कि जितने प्रयोग होंगे और जितना बच्चे प्रयोग करके सीखेंगे, वह तो समझने के लिए बहुत प्रभावी है।

शहनाज़ : मैं 'समझने' की थोड़ी विस्तार में व्याख्या करने की कोशिश कर रही हूँ। यदि मूलभूत बातों को समझा गया होता कि पूरे साल बच्चों का अवलोकन होता रहेगा और हर बच्चे की प्रगति बहुत ही सूक्ष्म स्तर पर नोट की जाएगी और तब उसके अनुसार बच्चे को आगे की कक्षाओं में बढ़ाया जाएगा, ताकि न उसपर बस्ते का बोझ हो, न पाठ्यक्रम का बोझ हो और उसकी सीखने की प्रक्रिया बहुत ही आनन्दमयी रहे और बिना किसी दबाव के वह आगे बढ़ता रहे। लेकिन यह सब उस प्रणाली में, जिसमें मौजूदा स्वरूप में परीक्षा होती है, सम्भव नहीं है। अभी की परीक्षा प्रणाली एक छन्नी की तरह है। वह हर स्तर पर बच्चों को छाँटती चलती है। यदि हम परीक्षा के इस मौजूदा ढाँचे से हट पाएँ तो बच्चों को और ज़्यादा सीखने के मौक़े उपलब्ध हो पाएँगे। लेकिन सतत और सम्पूर्ण मूल्यांकन की इस अवधारणा को शिक्षकों, अन्य सरकारी दफ़्तरियों द्वारा कितना समझा गया है, इसमें मुझे सन्देह है। मुझे लगता है कि बारीक़ियों को नहीं समझा गया है, उनको नहीं पता कि बच्चे को किस दिशा में और कहाँ तक ले जाना है। बच्चों में कौन-सी दक्षताएँ है? भाषा में दक्षता, गणित में दक्षता और इन दक्षताओं के लिए हमें कैसे काम करना है, यह कोई शिक्षक नहीं समझता है। जब यह समझ नहीं बनी है तो सीसीई की डायरी अलग तरह से भरी जा रही है और कक्षा में काम भी अलग तरह से हो रहा है। प्रशिक्षण में भी इस तरह की कोई बात स्पष्ट नहीं की जाती है कि इन दक्षताओं पर आपको कैसे काम करना है। मैं एक प्रशिक्षण में गई थी, वहाँ मैंने बार-बार पूछा कि इसको करने के लिए बच्चों के साथ काम कैसे करना पड़ेगा, तो किसी ने भी मुझे इस बारे में नहीं समझाया, स्पष्ट नहीं किया कि यह क्या है, बस कहा कि वह डायरी में लिखा है उस तरह से कर लेना।

यशोधरा : मैंने कभी बच्चों के साथ इतना काम नहीं किया है पर जब भी शिक्षकों के साथ काम किया है या जब भी बच्चों के साथ काम करने का मौक़ा मिला है तो यह बात तो पक्की है कि अगर बच्चों को सीखने को मिलता है तो वे सिर्फ़ उसको कक्षा तक ही सीमित नहीं रखते, कक्षा के बाहर भी बच्चे उसको बहुत रुचि से करते हैं। एक तरीक़ा यह हो सकता है कि हमारे पास पाठ्यचर्या है और पाठ्यक्रम है, तो उसके अनुसार हमें प्रत्येक कक्षा में जो हासिल करना है, उन हिस्सों को चिह्नित कर लें और कुछ अवयवों के लिए हम बच्चों को कक्षा से, पाठशाला से बाहर लेकर भी जाएँ, उनके घर या समाज तक। जैसे कि समानता के अधिकार की बातें सामाजिक विज्ञान में है, तो इस तरह की चीजों पर समझ के लिए हम बच्चों को काम दे सकते हैं कि आप पता करो कि आपके घर में कौन क्या-क्या काम करता है? क्या सब लोग समान काम करते हैं? या सबको कोई निर्णय लेने का समान अधिकार है? कुछ इस तरह की गतिविधियाँ। विज्ञान में अवलोकन करना, चीज़ों को ध्यान से देखना, एक उद्देश्य के तहत देखना आदि पर काम करना। एक शीट बनाकर

> **"अभी की परीक्षा प्रणाली एक छन्नी की तरह है। वह हर स्तर पर बच्चों को छाँटती चलती है। यदि हम परीक्षा के इस मौजूदा ढाँचे से हट पाएँ तो बच्चों को और ज़्यादा सीखने के मौक़े उपलब्ध हो पाएँगे।"**

बच्चों को दें कि किसका अवलोकन करना है और उस अवलोकन के तहत क्या-क्या दर्ज़ करना है। ज़ाहिर है कि शिक्षक का कार्यभार बढ़ेगा। बच्चे जब कुछ करके लाएँगे तो उस पर बातचीत भी करनी पड़ेगी, पर इस तरह के मौक़े शिक्षक उनके लिए बना सकते हैं जो कक्षा और पाठशाला के अन्दर ही नहीं, पाठशाला के बाहर भी सीखने की प्रक्रिया को जारी रखेंगे। हो सकता है इस स्थिति में भी पूरा न्याय नहीं हो पाए, लेकिन हम कुछ बेहतर की तरफ़ बढ़ पाएँगे, जिसमें बच्चों को सीखने के बेहतर मौक़े मिल पाएँगे।

दूसरा, बच्चों को कक्षा में बात करने की अनुमति नहीं होती और इसे अनुशासनहीनता

''बच्चे रचनात्मक एवं सृजनशील होते हैं और यह क्षमताएँ शुरू में ही सँवर जाएँ तो अच्छा है। साथ ही कुछ इस तरह से तय करें कि उनमें प्रकृति से जुड़ाव, प्रयोग करना, अवलोकन करना, फिर ख़ुद ही निष्कर्ष निकालना आदि हों, जिससे उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण का भी विकास हो सके।''

माना जाता है। कक्षा में बच्चों को उनकी बात बोलने की आज़ादी दी जाए। वे जो कहना चाहते हैं, वे जो सुनना चाहते हैं वह सब करने के लिए उन्हें स्वतंत्रता हो, उससे बहुत फ़र्क़ पड़ता है और इससे यह समझने में भी मदद मिलती है कि बच्चे समझ के किस स्तर पर हैं। मुझे भी लगता है कि यह दो-तीन चीज़ें कारगर होती हैं। पर यह पूरी तरह से उस समस्या का हल नहीं है।

राजेश भट्ट : दसवीं तक तो गतिविधि आधारित बहुत काम होना चाहिए। मेरा मानना है कि इस स्तर पर पाठ्यक्रम का दबाव भी बहुत ज़्यादा नहीं होता, अतः दसवीं तक जितना अधिक गतिविधि आधारित काम हो सके उतना ही बढ़िया है। चूँकि बच्चे रचनात्मक एवं सृजनशील होते हैं और यह क्षमताएँ शुरू में ही सँवर जाएँ तो अच्छा है। साथ ही कुछ इस तरह से तय करें कि उनमें प्रकृति से जुड़ाव, प्रयोग करना, अवलोकन करना, फिर ख़ुद ही निष्कर्ष निकालना जैसे कार्य हों, जिससे उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण का भी विकास हो सके। इसलिए दसवीं तक का पाठ्यक्रम उस तरह से डिज़ाइन हो जैसे– खोजबीन* या ऐसी ही अन्य किताबों का रहा है। मैंने भी कुछ दिन उसमें काम किया था। मुझे लगता है वे बहुत शानदार तरीक़े हैं, उसमें वास्तव में बच्चा सीख सकता है, अच्छी तरह से सीखता है। तो मुझे लगता है कि दसवीं तक तो इन चीज़ों का ख़याल रखना चाहिए, क्योंकि बाद में तो बहुत दबाव होता है। पर हमारा ढाँचा ही ऐसा है कि परेशानी बार-बार वहीं पर खड़ी हो जाती है, रटने पर।

शहनाज़ : अभी पाँचवी में एस.ई.क्यू.आई. (School Education Quality Index) और (सीसीई) सतत और व्यापक मूल्यांकन चल रहा है और यह काफ़ी गतिविधि आधारित है। इसके तहत शिक्षकों से अपेक्षा है कि वे पाठ्यपुस्तक में दी गई सभी गतिविधियाँ बच्चों के साथ करें। लेकिन शिक्षकों के साथ यह समस्या भी है कि एक कक्षा में जहाँ अलग-अलग स्तर के बच्चे होते ही हैं, तब सभी के साथ पाठ्यपुस्तक में दी गई वही गतिविधि नहीं की जा सकती। वैसे इसके लिए यह भी किया जा रहा है कि कक्षा में आते ही बच्चों का आधार टेस्ट लिया जाए और इस टेस्ट में शामिल बच्चे के स्तर के अनुसार उसके साथ लगभग दो महीनों तक काम किया जाए, और फिर जिस कक्षा में वह है उसका काम शुरू किया जाए। यह सिस्टम बच्चों के लिए बहुत प्रभावी है। यदि शिक्षक सक्रिय और नवाचारी है और हर कक्षा में कुछ नया करने की कोशिश करता है तो बच्चे रुचि लेकर ज़्यादा सीखेंगे। जैसा आपने कहा कि बच्चे को रोज नई चीज़ चाहिए। शिक्षक रोज़ाना तैयारी करके जाए,

पढ़कर जाए, नई-नई गतिविधियाँ कराए।

रजनी द्विवेदी : एक बात शहनाज़जी ने कही और राजेश भट्टजी ने भी कि बच्चे की भी अपनी अपेक्षाएँ हैं। मतलब अगर उसको समझ का चस्का लगे तो वह चस्का टूटना नहीं चाहिए, टीचर को भी उसके साथ फिर नियमित रहना चाहिए।

शहनाज़ : लेकिन अगर दसवीं क्लास तक गतिविधियाँ करने की रुचि बनाना है, तो जैसा कि राजेश भट्टजी कह रहे हैं, कक्षा तीन से ही पूरी गतिविधियाँ कराने लगें तो बच्चों को चस्का लग जाएगा, तो फिर हर क्लास में वे चाहेंगे कि शिक्षक कुछ काम कराएँ और नहीं मिलने पर वे कहेंगे भी कि हमारी किताब में यह है तो आप हमको यह करवाओ।

रजनी द्विवेदी : राजेशजी, कोचिंग में तो एक ही लक्ष्य वाले बच्चे आते हैं लेकिन ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षा में जिसमें आप साइंस पढ़ा रहे हैं, वहाँ पर तो बच्चे छँटकर आते होंगे।

राजेश भट्ट : नहीं, उनका लक्ष्य भी वही है, वे भी चाहते हैं कि हमारा आईआईटी-जेईई में चयन हो जाए।

रजनी द्विवेदी : उनको सैद्धान्तिक रूप से विज्ञान सीखने में और अपनी समझ को विकसित करने में किस तरह की समस्याएँ आती हैं?

राजेश भट्ट : सरकारी स्कूलों में सबसे बड़ी समस्या यह है कि वहाँ संसाधन नहीं हैं, विज्ञान के लिए प्रयोगशाला नहीं है। बिना प्रयोगशाला के विज्ञान संकाय खोल दिया। कानपुर शासकीय विद्यालय की बात करूँ तो सरकार से एक भी रुपया प्रयोगशाला के लिए नहीं आया है। जैसे-तैसे हम लोगों ने कुछ रुपया इकट्ठा किया और काम शुरू किया। कक्षा में हम जान डालने की कोशिश करते हैं कि बच्चा प्यार से विज्ञान को पढ़ ले, और वह हो भी जाता है। ऐसा नहीं है कि बच्चा विषय छोड़ देता है। शिक्षक की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। शिक्षक के अन्दर अगर ताक़त है तो वह पेड़ के नीचे भी बच्चों को पढ़ा देगा और नहीं है तो वह सुविधा में भी कुछ नहीं कर पाएगा।

यशोधरा : अभी मैं शिक्षा सम्बल कार्यक्रम में काम कर रही हूँ। यह सही है कि ऐसे बहुत से स्कूल हैं जहाँ संकाय तो खुल गया और पद भी हैं लेकिन बहुत समय से खाली हैं, यानी शिक्षक ही नहीं हैं। तब बच्चे अपने स्तर पर जितना पढ़ सकते हैं पढ़ते हैं। और अगर उनके गाँव में ऐसी कोई सुविधा उपलब्ध है, कि कोई ट्यूशन पढ़ा सकता है तो वे वहाँ पढ़ते हैं। हमारे कैम्प में बच्चे आते हैं और वे बताते हैं कि हम तो ख़ुद ही अपने स्तर पर कुछ-कुछ पढ़ रहे हैं। ये सारी परिस्थितियाँ भी सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को बाधित कर रही होती हैं।

''यदि शिक्षक सक्रिय और नवाचारी है और हर कक्षा में कुछ नया करने की कोशिश करता है तो बच्चे रुचि लेकर ज़्यादा सीखेंगे। जैसा कि कहा गया है बच्चे को रोज नई चीज़ चाहिए। शिक्षक रोज़ाना तैयारी करके जाए, पढ़कर जाए, नई-नई गतिविधियाँ कराए।''

डॉ गिरीश शर्मा : विद्यालय अवलोकन के लिए मुझे सिरोही जाने का मौक़ा मिला था। पहले स्कूल दसवीं तक था और फिर उसका उन्नयन हुआ था बारहवीं तक, लेकिन शिक्षक नहीं थे। वहाँ पहली से आठवीं तक के बच्चे खाली बैठे रहते थे क्योंकि जो आठवीं के टीचर थे उनका सारा फ़ोकस दसवीं और बारहवीं पर था और वे उनको पढ़ाते थे। लेकिन ज़्यादा फ़ोकस तो उन छोटे बच्चों को पढ़ाने पर होना चाहिए था, दसवीं और बारहवीं के बच्चे तो ख़ुद भी पढ़ सकते थे। लेकिन वे ऐसा नहीं करते थे। चूँकि पहली से आठवीं तक के बच्चों के लिए सुबह

से लेकर शाम तक कुछ भी करने के लिए नहीं होता था, कुछ बच्चे दो-तीन दिन आते फिर उन्हें लगता कि जब कुछ हो ही नहीं रहा तो विद्यालय क्या जाना? बच्चों का स्कूल से पलायन करने का एक कारण यह भी है। प्राथमिक कक्षाओं में बच्चों पर ध्यान ही नहीं दिया जाता जिसके परिणामस्वरूप शुरुआत ही हमेशा कमज़ोर रहती है। अभी बीएड करने वाले छात्र-शिक्षक इन्टर्नशिप के लिए जा रहे हैं। उनको मुख्यतः नौवीं और दसवीं कक्षा पढ़ानी थी लेकिन उनको प्राथमिक कक्षाएँ ही दी जाती हैं। और उसपर ये नए छात्र-शिक्षक क्या पढ़ाते हैं, कैसे पढ़ाते हैं, पढ़ा भी रहे हैं या नहीं, यह भी नहीं देखते।

"लेकिन सवाल यह भी है कि क्या जो आज की पाठ्यपुस्तकें हैं, एनसीईआरटी जैसी किताबों को छोड़कर, वे बच्चों को समझने के अवसर देती हैं या शिक्षक की ऐसी बाध्यता बनती है कि वह बच्चे को बिना समझाए उस पाठ को पढ़ा ही नहीं सकता है?"

गुरबचन सिंह : इस सारी बातचीत से यह स्थापित होता है कि बच्चे ज़्यादा-से-ज़्यादा अंक प्राप्त करें इसलिए रटने की प्रवृत्ति बढ़ी है। दूसरा– जो शहनाज़ ने साफ़तौर पर कहने की कोशिश की है कि समय बहुत कम है और कोर्स बहुत ज़्यादा है। और इस वजह से बच्चों के साथ उनको समय देते हुए समझ विकसित करने की दिशा में काम नहीं हो पाता और इसलिए बच्चों को रटने की तरफ़ जाना पड़ता है। कई बार हम ख़ुद ही कह देते हैं कि रट लो, समझना बाद में। तीसरा– कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण कारण भी हैं जो रटने की प्रवृत्ति की ओर ले जाते हैं जैसे– स्कूल में टीचर का कम होना, पाठ्यक्रम अधिक होना और कभी-कभी उसका स्तर के अनुसार न होना। कक्षाओं में बच्चे ज़्यादा होना यानी शिक्षक-छात्र अनुपात युक्तिसंगत नहीं होता है। ये सभी सीखने के माहौल को प्रभावित करते हैं। क्या आपको लगता है कि यही मुख्य कारण हैं या इसके अलावा भी कोई अन्य कारण हैं जो बच्चे को रटने की तरफ़ ले जाते हैं? मुझे एक दूसरा द्वन्द्व भी दिखाई दे रहा है, जैसे– शहनाज़ ने कहा कि बच्चे शुरू में रट लेते हैं और बाद में समझ लेते हैं और इसमें कोई दिक़्क़त नहीं है। लेकिन साथ ही हम यह भी कह रहे हैं कि समझने की संस्कृति को शुरुआत से ही बढ़ावा देने की आवश्यकता है। इन दोनों में क्या ठीक है, क्या ज़्यादा बेहतर है या दोनों ही ठीक हैं? चौथी बात यशोधरा ने कही कि पाठ्यपुस्तक के सारे पाठ रटने के लिए बाध्य करते हों यह कहना ठीक नहीं है। अवधारणाओं को रटवाया भी जा सकता है और समझाया भी जा सकता है। लेकिन सवाल यह भी है कि क्या जो आज की पाठ्यपुस्तकें हैं, एनसीईआरटी जैसी किताबों को छोड़कर, वे बच्चों को समझने के अवसर देती हैं या शिक्षक की ऐसी बाध्यता बनती है कि वह बच्चे को बिना समझाए उस पाठ को पढ़ा ही नहीं सकता है? इसके बारे में आपके खुद के, अपनी पाठ्यपुस्तकों के साथ जो अनुभव हैं, उन्हें साझा करेंगे तो और स्पष्टता बनेगी।

यशोधरा : रटना और समझना दोनों को बिल्कुल ही अलग-अलग करके देखने में दिक़्क़त है। मेरा यह मानना है कि शुरुआती स्तर पर या किसी भी स्तर पर समझना और रटना ये दोनों प्रक्रियाएँ साथ-साथ चलती हैं। ऐसा नहीं है कि एक समय पर समझ लिया तो उसमें रटना शामिल नहीं है। जैसे– अगर हम विज्ञान या गणित की बात करें तो कुछ शब्दावलियाँ है या कुछ सूत्र हैं। यहाँ अनुपात पर ध्यान देने की ज़रूरत है कि शुरुआती सालों में इस बात का ध्यान रखा जाए कि रटने के हिस्से कम-से-कम हों या जो विषयगत अवधारणात्मक जानकारियाँ हैं, वे कम-से-कम हों, और जो हों भी वे ऐसी भाषा में हों जिसे बच्चा समझ सके ताकि समझने

का हिस्सा ज़्यादा व्यापक रहे। धीरे-धीरे जब हम प्राथमिक से माध्यमिक व उच्च माध्यमिक कक्षाओं या कॉलेज की तरफ़ आते हैं, तब उस विषय की भी माँग रहती है और उस परिस्थिति में हम यह मानकर चलते हैं कि एक समझ विकसित होने के बाद परिभाषाएँ याद करना या वह तकनीकी शब्दावली याद करना या उस विषय की भाषा में बातों को व्यक्त कर पाना आसान हो जाएगा। यदि शुरुआती स्तर पर समझना सशक्त रहा और रटने का हिस्सा कम रहा या रटने की चीज़ों को बच्चों के साथ सरल भाषा में साझा किया गया। तो दोनों को एकदम अलग-अलग करके नहीं, पर उनके अनुपात को घटा-बढ़ा कर आगे बढ़ें तो समस्या कम होगी।

रजनी द्विवेदी : तो फिर तो आप यह कह रहे हैं कि रटना भी सीखने का हिस्सा होना चाहिए?

यशोधरा : वह तो है ही, आप उसको नहीं हटा सकते। वह साथ-साथ चलेगा।

डॉ गिरीश शर्मा : हर व्यक्ति तो रट नहीं सकता।

गुरबचन सिंह : सवाल यह है कि रटने की ज़रूरत ही क्यों महसूस होती है ? मेरे शिक्षक मुझे यह सिखाते आए हैं कि अगर कुछ समझ में नहीं आ रहा है तो इसको रट लो। तो उनका आग्रह तो यही था कि चीज़ों को समझना चाहिए लेकिन अभी समझ में नहीं आ रहा है तो रट लो तो रटना एक तरह की बाध्यता है या यह ज़रूरत है? और क्या यह भी पढ़ाई का एक हिस्सा है?

रजनी द्विवेदी : समझना, रटना और याद करना, इसको आप कहाँ रखते हैं? जैसा कि राजेश भट्ट ने कहा कि समझने और रटने दोनों को स्मृति में रहना चाहिए। याद करना मतलब स्मृति में रहना। क्योंकि आपको नया कुछ सीखना है तो स्मृति में कुछ होगा तो आप आगे बढ़ सकते हैं। अब आपको फ़र्क़ करना पड़ेगा कि याद करने और रटने को आप कैसे देखते हैं और समझने में, इनमें से किसकी भूमिका ज़्यादा है या कम है? और कब, किसकी भूमिका ज़्यादा हो जाती है? फिर तो यह बात भी करनी पड़ेगी। और जब बच्चे रटते-रटते समझते हैं तो उसका क्या तात्पर्य है?

डॉ गिरीश शर्मा : रटते-रटते नहीं समझ सकते हैं। रटना तभी होता है जब कुछ समझ में नहीं आ रहा है, यानी यह स्मृति में रखने का एक तरीक़ा है। परीक्षा भी आ गई है और कुछ समझ भी नहीं आ रहा है तो परीक्षा पास करने के लिए रटना है, लेकिन समझना है तो अलग तरह की कोशिश करनी ही पड़ेगी।

शहनाज़ : रटते-रटते समझने वाली बात के बारे में मेरा अनुभव है कि बच्चे को जैसे सबसे पहले सूत्र दिखता है तो वह उसको रटने की ही कोशिश करता है क्योंकि उसको लगता है कि इसके तो आगे-पीछे कुछ है ही नहीं और मैडम ने कह दिया कि क्षेत्रफल का तो 'लम्बाई गुणा चौड़ाई' ही लिखना है, बस उसको रट लो। लेकिन जब बच्चे को समझाया जाता है और जब किसी काम के ज़रिए करवाया जाता है कि लम्बाई गुणा चौड़ाई हम क्यों कर रहे हैं, तब कुछ बच्चे यह समझना चाहते हैं। लेकिन वहाँ पर भी बहुत सारे बच्चे ऐसे होते हैं जो मानते हैं कि जब इसको लिखने भर से सवाल हल हो जाता है तो इतना समझने की क्या ज़रूरत है।

" रटते-रटते नहीं समझ सकते हैं। रटना तभी होता है जब कुछ समझ में नहीं आ रहा है, यानी यह स्मृति में रखने का एक तरीक़ा है। परीक्षा भी आ गई है और कुछ समझ भी नहीं आ रहा है तो परीक्षा पास करने के लिए रटना है, लेकिन समझना है तो अलग तरह की कोशिश करनी ही पड़ेगी। "

जिस बच्चे ने शुरू से कुछ समझते हुए काम किया होगा तो उसको लगेगा कि अगर मैं यह समझ लूँगा तो मुझे हमेशा यह सूत्र याद रहेगा। पाठ्यपुस्तक वाली बात भी यहाँ जुड़ रही है। राजस्थान में तीन साल पहले जो पाठ्यपुस्तक थी उसमें लम्बाई गुणा चौड़ाई के सूत्र को देने से पहले भी कुछ अभ्यास थे। यह पाठ्यपुस्तक शिक्षक को इस तरह से बाध्य करती थी कि उसको वे अभ्यास करवाने ही होंगे और उस खण्ड में बच्चा एक चौकोन में दिए गए वर्गाकार बॉक्स को गिनेगा और लम्बाई गुणा चौड़ाई से क्षेत्रफल निकालेगा या परिणाम निकलेगा, तो पहले वह करके ही देखेगा। किताब में खाली पेज़ भी थे तो शिक्षक को करवाना ही था और करवाने के बाद यह हुआ कि बच्चों को सारे

"पाठ्यपुस्तकों में तो अभी भी बहुत ज़्यादा सुधार की ज़रूरत है। क्योंकि इन्हीं के कारण अभी फिर सारा ज़ोर रटने पर ही जा रहा है।"

सूत्र समझ में आए। लेकिन इन किताबों से पहले भी वे रट ही रहे थे और अभी भी वे रट ही रहे हैं। यानी एक तरीक़ा यह है कि पाठ्यपुस्तक इतना मज़बूर कर दे कि आपको करवाना या करवा के समझाना ही पड़ेगा और कोई चारा ही नहीं है। खाली पन्ना पड़ा है तो फिर शिक्षक क्या करेगा? सवाल तो लिखेगा-ही-लिखेगा, ख़ुद कुछ करवाएगा ही। दूसरी जगह यह होता है कि बच्चा रटते-रटते उस चीज़ को समझ जाता है कि मैंने तीसरी और चौथी क्लास में भी पढ़ा था कि क्षेत्रफल=लम्बाई गुणा चौड़ाई, तो वहाँ तो मुझे शिक्षक ने नहीं समझाया था। शिक्षक ने कहा था कि लिख दो और ऐसे करके ऐसे कर देना। लेकिन बाद में समझ बन गई, शायद बहुत बाद में।

मेरा अनुभव है कि कक्षा में दो-तीन तरह के बच्चे होते हैं, कुछ समझने वाले होते हैं तो वे उस चीज़ को समझकर ही सन्तुष्ट होते हैं कि यह बात अब पक्की हो गई, अब यह हमेशा याद रहेगी। लेकिन कुछ नहीं भी होते हैं। कई बार शिक्षक को लगता है कि वे समझा नहीं पा रहे हैं और बच्चे समझ नहीं पा रहे हैं, पूरा जुलाई निकल गया और अभी तक 1 से 100 तक की गिनती भी नहीं हो पा रही है। ऐसी भी समस्याएँ मैंने शिक्षकों के साथ देखी हैं, तो वे शुरुआती कक्षाओं में ही धीरे-धीरे रटाने पर आ जाते हैं। बच्चे ने समझकर याद किया है या रटकर, यह तब पता चलता है जब उसके द्वारा किए गए समझ के प्रयोग को देखते हैं, या फिर यह कि फलाँ चीज़ तो जुलाई में की गई थी, जनवरी तक याद है मतलब कि इसको यह बात समझ में आ गई। लेकिन फिर भी बच्चे के दिमाग़ में क्या है और वह कैसे वहाँ पर है इसका पता लगाना मुश्किल है और उसकी ठीक से जाँच भी हम नहीं कर पाते। लेकिन पाठ्यपुस्तकों में तो अभी भी बहुत ज़्यादा सुधार की ज़रूरत है। क्योंकि इन्हीं के कारण अभी फिर सारा ज़ोर रटने पर ही जा रहा है।

गुरबचन सिंह : पाठ्यपुस्तक में किस तरह की चीज़े हों या उसकी संरचना किस तरह की हो कि वह रटने को कम करें, क्या कुछ उदाहरण हैं आपके सामने जहाँ रटने की सम्भावना तो बिल्कुल ही नहीं बनती हो ।

राजेश भट्ट : खोजबीन* पुस्तक विज्ञान सीखने के लिए या स्वाध्याय के लिए बहुत ही शानदार थी, फिर भी दसवीं तक तो यह सब सम्भव है, मेरा फ़ोकस बार-बार ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षा पर आ जाता है। यहाँ ये तरीक़े भारी हो जाते हैं, काम सम्भव ही नहीं है लेकिन छोटी क्लास में तो अधिगम गतिविधि-आधारित होना चाहिए। पत्तियाँ इकट्ठी करना उनका वर्गीकरण करना कुछ ऐसी ही गतिविधियाँ हैं।

गुरबचन सिंह : आपने कहा कि उस पुस्तक में यह सम्भावना है कि बच्चे ख़ुद अध्ययन करें। ऐसा उसकी संरचना में होगा। तब यह बाध्यता और ज़रूरत बनती है कि इसको ख़ुद पढ़े बिना या करे बिना, नहीं कर सकते। यह उस चीज़ का एक आधार बन सकता है। उदाहरण के लिए, आप एनसीईआरटी की किताबों के अभ्यास देखें। कोई अभ्यास ऐसा नहीं है कि जिसका जो तय उत्तर है, वह पाठ में मिल जाए। आपको कुछ नहीं मिलेगा, आपको कुछ अतिरिक्त पढ़ना ही पड़ेगा, बाहर जाना पड़ेगा, सोचना पड़ेगा और कुछ-न-कुछ करना पड़ेगा। दिए गए कई प्रश्नों के तय उत्तर भी नहीं हैं। ऐसे और कौन-कौन से तरीक़े हो सकते है जो किसी पाठ्यपुस्तक को रटने से बाहर ले जाने की कोशिश करें।

राजेश भट्ट : उसमें एक चुम्बक वाला अध्याय था। उसमें लिखा था कि अपने आसपास की जितनी भी छोटी-छोटी चीज़ें हैं उन्हें इकट्ठी कर लो। देखो कि उनमें से कौन-कौन सी चुम्बक से चिपकती है, उसकी सूची बना लो। जो नहीं चिपकती हैं, वे कौन-सी हैं और किस-किस पदार्थ से बनी हैं। और जो चुम्बक से चिपक रही हैं वे किस चीज़ के बनी हैं। वहाँ से वह एक निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि चुम्बक से लोहा चिपक रहा है पर लकड़ी और प्लास्टिक चुम्बक में नहीं चिपकेंगे। इस तरह जो अवधारणा बनती है, वह ज़ाहिर है कि इससे बेहतर होती है क्योंकि इस प्रयास से एक तो हम बच्चों को सैद्धान्तिक रूप से समझा रहे हैं कि लोहा चुम्बक से चिपक जाएगा, बाक़ी चीज़ें नहीं चिपकेंगी। दूसरे एक बच्चा अपने आसपास की चीज़ें इकट्ठी कर रहा है और उनकी सूची बना रहा है, फिर जो चीज़ें चुम्बक से चिपकी हैं, उनकी सूची बना रहा है कि वे किसकी बनी हैं और वह लिख रहा है और जो चुम्बक से नहीं चिपकीं वह भी लिख रहा है। यह समझ विकसित करने का बहुत शानदार तरीका था। पर आगे जाकर वह चला नहीं। यह सब छोटी कक्षाओं तक अच्छा और सम्भव है। बड़ी क्लास में जाने के बाद या तो उस तरह की प्रयोगशाला स्थापित हो जहाँ वास्तव में विज्ञान के सभी विषयों की हर चीज़ को गहराई से करके देखा जा सकें और वैसी ही मूल्यांकन पद्धति हो। ख़ुद करने में बहुत सीखना होता है। जैसे– उपकरणों को अलमारी में से ख़ुद लेना, प्रयोग क्या है, तो उसके लिए क्या उपकरण चाहिए, सर्किट बनाना है, क्या कनेक्शन करने होंगे, फिर ख़ुद ही रीडिंग लेना, उनसे ग्राफ़ बनाना, निष्कर्ष निकालना आदि। इसके लिए पहली बात है कि परीक्षा ऐसी ली जाए कि आपको बनाकर दिखाना है। शिक्षक बच्चों की थोड़ी-बहुत मदद करता रहे, उनको जहाँ ज़रूरत हो, निर्देश देता रहे तब जो समझ विकसित होगी उसका मुक़ाबला ही नहीं है। किताबें और मूल्यांकन का ढाँचा ऐसा हो कि टीचर अपने-आप बाध्य हो जाए कि मुझे इस पर

''बच्चा अपने आसपास की चीज़ें इकट्ठी कर रहा है और उनकी सूची बना रहा है, फिर जो चीज़ें चुम्बक से चिपकी हैं, उनकी सूची बना रहा है कि वे किसकी बनी हैं और वह लिख रहा है और जो चुम्बक से नहीं चिपकीं वह भी लिख रहा है। यह समझ विकसित करने का बहुत शानदार तरीका था।''

चलना है। पर अभी पाठ्यपुस्तकें और मूल्यांकन प्रणाली ऐसी नहीं है जो शिक्षक को इस तरह से करने के लिए बाध्य करे।

शहनाज़ : अभी कक्षा पाँचवी में दक्षताओं पर आधारित प्रश्न और उनको इस तरह से ही दिया गया कि उससे बच्चे की दक्षता पता चले। और शिक्षक को उपलब्धि की सूची भी वैसी ही बनानी है। लेकिन बच्चे को क्लास में वैसा करवाया ही नहीं गया है। तो अब यहाँ तो उल्टा ही हो गया कि सीसीई की तरह से पेपर तो बन गया लेकिन सीसीई के तरीक़े पर उससे काम नहीं करवाया गया। पाँचवी क्लास के बच्चे को बिल बनाने के

लिए दिया था, पर बच्चे को वह बिल बनाना ही नहीं आ रहा था। जबकि हमारे केन्द्र में निजी और सरकारी दोनों ही बच्चे थे। बच्चों को भी पता नहीं चल रहा था कि यह बिल बनाने में करना क्या है? ज़्यादातर बच्चे मुझसे पूछ रहे थे कि यह सवाल क्या है? यहाँ तो कुछ करने को ही नहीं दिया हुआ है। यहाँ प्रश्न लिखा हुआ था और आगे वाले पेज पर उस बिल का पूरा प्रोफ़ार्मा बना हुआ था। जब ऐसा करने के लिए आया तो बच्चों को कुछ समझ में ही नहीं आ रहा था, क्योंकि इस तरह का अभ्यास कक्षा में कभी हुआ ही नहीं और उन्होंने कभी क्लास में बिल देखा ही नहीं। मेरी कक्षा में इस पाठ को पढ़ाते समय मैंने बच्चों से बिल मँगवाए थे और बच्चे हर तरह के बिल लाए थे। घर में आटा, दाल, चावल लाते हैं उसका भी था, बिजली का भी बिल था और पानी का भी बिल साथ लाए थे। अलग-अलग तरह के बिल हो गए थे। इस तरह उन्होंने देखा था कि बिल ऐसे होते हैं और उनमें कहाँ ग्राहक के नाम होते हैं? कहाँ पर पैसे लिखे हैं? कहाँ पर सामान लिखे हैं? वह किताब में भले ही बिल का ख़ाका तो देख रहा है पर किताब में तो एक ही तरह का था, मगर वहाँ तो उसको अलग-अलग तरह के देखने को मिले। फिर मैंने अपना पेपर बनाया था और उसमें अपना बिल दिया था और दो तरीक़े दिए थे कि बिजली का बिल ऐसा होता है और बाज़ार से जो सामान खरीदते हैं वह बिल ऐसा होता है। और अभी मैंने देखा कि बिल आया और बच्चों को पता ही नहीं है कि कैसे क्या करना है। तो शिक्षक को क्लास में इस तरह का काम करना कभी याद ही नहीं आता है। जिस तरह से दक्षताएँ विकसित की जानी चाहिए उस तरह से ही शिक्षक का प्रशिक्षण होना चाहिए।

डॉ गिरीश शर्मा : हम राजस्थान की पाठ्यपुस्तकों की बात करें तो शुरुआत में ये किताबें एनसीईआरटी की तरह ही गतिविधि-आधारित लिखी गई थीं। प्रारम्भ में तो वे ठीक से चलीं लेकिन शिक्षक को इतना काम करना पड़ा कि बाद में वे किताबें बदल दी गईं और वापस पुराने पैटर्न पर सारी किताबें आ गईं। जबकि होना यह चाहिए था कि जो किताबें लिखी गई थीं वे एक क़दम आगे और अच्छे से लिखी जानी चाहिए थीं।

पुस्तकों में बच्चों को ख़ुद करने, सोचने व अपने तर्क रखने के मौक़े थे। उन्हें कई प्रयोग भी करने थे और ऐसे परिभ्रमण भी जिनमें उन्हें कई पहलुओं का गहराई से अध्ययन भी करना था।

रजनी द्विवेदी : आप सभी ने संवाद में सहभागिता करके इसे सार्थकता प्रदान की, सभी का अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन की ओर से शुक्रिया।

खोजबीन* -खोजबीन, पूर्व माध्यमिक शालाओं के लिए लोक जुम्बिश परिषद द्वारा राजस्थान के चुने गए ब्लॉक में विज्ञान शिक्षा को ज़्यादा अर्थपूर्ण शिक्षण सम्भव बनाने के प्रयास के लिए तैयार की गई पाठ्यपुस्तकें हैं। इन्हें बनाने में राजस्थान के सरकारी ढाँचे में कार्य कर रहे शिक्षकों के अलावा एकलव्य व विद्या भवन शिक्षा सन्दर्भ केन्द्र शामिल थे। इनकी शुरूआत पीसांगन ब्लॉक से 1998 में हुई। पुस्तक विज्ञान शिक्षा को बेहतर करने के प्रयास का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा थी और इसके साथ शिक्षकों का परिचय करवाने व समझ और जुड़ाव बनाने के लिए प्रशिक्षण के अलावा कई और माध्यम भी सोचे गए थे।